सहजानंद शास्त्रमाला

रत्नकरंड श्रावकाचार प्रवचन

भाग 4

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

श्री स्वामी समन्तभद्राचार्य कृत

श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार

टीकाकार :
अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सहजानन्द स्वाध्याय मण्डल
ग्रन्थ क्रमांक........................

प्रकाशक
सुनील कुमार जैन
मन्त्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

द्वितीय संस्करण
११००

सन् १९९६

मूल्य
60 रु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रस्तावना

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

भारतीय धर्मों में जैन धर्म का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि उसके अहिंसा और अपरिग्रहवाद आदि सिद्धान्त बहुत ही प्राचीन हैं। इसके प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव हैं। जिन्हें आदि ब्रह्मा भी कहा जाता है। जैन सिद्धान्त ने ही लोक में समता-समानता अथवा विश्व प्रेम की अनुपम धारा को जन्म दिया है। अनेकान्त के व्यवहार द्वारा उनके पारस्परिक विरोधों का निरसन करता हुआ उनके जीवन में समन्वय और सहिष्णुता का आदर्श पाठ सिखाता है।

जैन धर्म में भावों की प्रधानता है, उस में परिणामों की अच्छाई, बुराई का जो स्वरूप एवं फल बतलाया गया है और जो जीवन की उन्नति अवनति का स्पष्ट प्रतीक है जिसके द्वारा नैतिक एवं आध्यात्मिक रूप से मानव अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठा सकता है और पूर्ण विकास तक पहुँच सकता है।

जैन धर्म में जहाँ भावों की प्रधानता है वहाँ उनके आचार को भी प्रमुख स्थान दिया गया है। उसके सिद्धान्त चार भागों में विभक्त हैं जिन्हें चार अनुयोग भी कहते हैं, चरणानुयोग में जीवों के आचार मार्ग का विधिवत कथन है। इसमें गृहस्थ और साधुओं के आचार-विचार का विवेचन है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी आचार मार्ग से सम्बन्ध रखता है। इसी कारण इस का नाम **"रत्नकरण्डश्रावकाचार"** है। ग्रन्थ में जैन श्रावक के आचारों का सांगोपाङ्ग कथन दिया हुआ है। यह ग्रन्थ उपलब्ध श्रावकाचारों में सब से प्राचीन है। ग्रन्थ में आप्त-आगम और गुरु के लक्षणों की परिभाषायें तथा रत्नत्रय, द्वादश व्रतों और प्रतिमाओं के लक्षण और सम्यग्दर्शन की महत्ता का स्पष्ट कथन किया है साथ ही जैन तीर्थंकर केवली की धर्म देशना को सुन्दर उदाहरण द्वारा पुष्ट किया गया है।

इस ग्रन्थ के कर्ता प्रतिभा सम्पन्न विद्वान, आचार्य, तर्कशिरोमणि और महान योगी थे आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी। आप में वाद करने की अद्‌भुत शक्ति थी। आप का व्यक्तित्व महान और प्रज्ञायें असाधारणता थी। आप क्षत्रिय राजपुत्र थे। आप का बाल्यकालीन नाम शान्ति वर्मा था। उन्होंने सांसारिक वैभव निःसार समझकर छोड़ दिया था। आचार्य समन्तभद्र स्वामी जी का समय विक्रम की दूसरी तीसरी शताब्दी माना जाता है।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार पर जो पूज्य गुरुवर्य्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानन्द जी महाराज ने प्रवचन दिये है वह इतने लोकप्रिय हुए कि स्वाध्याय प्रेमियों की मांग को देखते हुए पुनः प्रकाशित कराये जा रहे है एक-एक सूत्र पर यह प्रवचन श्री सहजानन्द जी के जीवन की आत्म साधना अथवा ज्ञानाभ्यास का अनुपम फल है। इन प्रवचनों के अवलोकन से महाराज श्री की आन्तरिक भावना का परिज्ञान और उनकी लगन, कर्तव्यनिष्ठा, उत्साह तथा आत्म जागृति का भान सहज में हो जाता है।

पाठक प्रवचनों की भाषा विशेषता और विवेचन शैली का स्वयं ही अनुभव कर सकते है। इस प्रकार यह प्रवचन गृहस्थों के लिए बहुत ही उपयोगी है। प्रवचनों में कहीं-कहीं पर चरणानुयोग के विषय को उसके पात्र की सीमा से कुछ ऊँचा कहा गया हैं। अर्थात् आचार मार्ग का विधि विधान धारण करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा न कर उच्चादर्श से प्रेरित होकर निरुपित किया गया है। क्योंकि श्री सहजानन्द जी महाराज का आशय विशुद्ध और वस्तु स्थिति के दिखलाने का रहा है।

इस संस्करण को नया रूप देने में मान्यवर खेमचन्द जी जैन सर्राफ मन्त्री श्री सहजानन्द शास्त्र माला ने अथक परिश्रम किया है, जो अत्यन्त प्रशंसनीय है, इसके लिए वह बधाई के पात्र हैं। मेरी तो यही भावना है कि सभी धर्म स्नेही बन्धु इस ग्रन्थ का पठन-पाठन रूप स्वाध्याय से सम्यग्दर्शन प्राप्त कर अपने जीवन को सफल बनावें।

सुमेर चन्द जैन
सम्पादक
"वर्णी प्रवचन"

सहजानन्द स्वाध्याय मण्डल
ग्रन्थ क्रमांक.........................

Version 1

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

http://sahjanandvarnishastra.org/

पूज्य श्री १०५ क्षु० गुरुवर्य्य मनोहरजी वर्णी

सहजानन्द महाराज

जन्म स्थान—दुमदुमा (जिला टीकमगढ़), बुन्देलखण्ड (म० प्र०)

जन्म तिथि—कार्तिक कृष्णा दशमी ब्रह्ममुहूर्त सं० १९७२, सन् १९१५

Report any errors at vikasnd@gmail.com

साहित्य निर्माण—१९४२ से १९७८ तक, ग्रन्थ-संख्या लगभग ५००

शरीरत्याग काल—३० मार्च, सन् १९७८ त्यागी भवन सदर मेरठ।

http://www.jainkosh.org

रत्नकरण्ड प्रवचन चतुर्थ भाग

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥ १३६ ॥

श्रावककी ग्यारह प्रतिमाओंका विधान—इस छंदसे पहले समाधिमरणका कर्त्तव्य बताया था और उससे पहले व्रती श्रावकोंके कर्त्तव्य बतायेथे। तो इस प्रसंगमें अन्तमें यह जिज्ञासाहो रही हैकि व्रती श्रावक किस किस प्रकारके कर्त्तव्यको करता है और उसके कितने दर्जे हैं, जैसे मुनिजन एकही समान हुआ करते हैं वैसेही क्या श्रावकभी एकही समान होते हैं? यद्यपि मुनियोंके आचरणमें कमी वेशीके कारण पुलाक वकुस आदिक भेद कर दिए गए हैं लेकिन उन सबका संकल्प प्रतिज्ञा महाव्रत एकही समान है। तो जैसे मुनियोंका महाव्रत एक समान है इसी प्रकार श्रावकोंके व्रतभी क्या एक समान हैं? इसहीके समाधानमें श्रावकोंकी ११ प्रतिमावोंका वर्णन प्रारम्भहो रहा है। इस छंदमें बताया है कि अरहंत भगवंतने श्रावकके स्थान ११ बताए हैं। वैसे श्रावक के स्थान असंख्यात हैं जिनकी गिनती नहीं परिणामोंके भेदसे पर उन सब असंख्याते स्थानोंको संक्षेपसे कहा जाएजोकि व्यवहारमें प्रयोजनिक हैंतोवे होते हैं ११ पद और उन पदोंमें ये पद पूर्व पदोंके साथ चलते हैं और इसी तरह आगे क्रमसे बढ़ते हैं अर्थात् किसीके यदि तीसरी प्रतिमा है, तीसरा पद हैतो पहलेदो पद अवश्य होने चाहिएँ। किसीके ११वां पद हैतो उसके पूर्वके १० पद अवश्य होने चाहिएँ। ये ११ प्रतिमाएँ अटपट नहीं होतींकि ७वीं प्रतिमा लेवेतो उसे ६ प्रतिमावोंसे प्रयोजन नहीं। अरे जिसकी ७वीं प्रतिमा है उसकी पूर्वकी ६ प्रतिमाएँतो रहेंगीही। जैसे मानों किसीकी ११वीं प्रतिमा हैतो इसका अर्थ हैकि उसकी १ से लेकर ११ तक प्रतिमाएँ हैं। वे ११ पद कौनसे हैं? (१) दर्शन, (२) व्रत, (३) सामायिक, (४) प्रोषधोपवास, (५) सचित्त त्याग, (६) रात्रि भोजन त्याग, (७) ब्रह्मचर्य, (८) आरम्भ त्याग, (९) परिग्रह त्याग, (१०) अनुमति त्याग और (११) उछिष्टाहार त्याग। जो जिस प्रतिमाका धारी है वह उससे पीछेकी प्रतिमावोंका पालन करता हुआही विवक्षित प्रतिमाका पालन करता है, ऐसा नहो सकेगाकि किसीने ८वीं प्रतिमाली है तो ८वींतो पाले और पहले की ७ प्रतिमावोंको न पाले। इन प्रतिमावोंमें पहले ६ प्रतिमावों तक जघन्य श्रावक कहलाता है। ७वीं प्रतिमासे १०वीं प्रतिमा तक मध्यम श्रावक कहलाता है, ११वीं प्रतिमामें उत्कृष्ट श्रावक कहलाता है। अब उनमेंसे प्रथम प्रतिमाका वर्णन करते हैं।

सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः।
पञ्चगुरुचरणशरणो दार्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥ १३७ ॥

दर्शनप्रतिमाके वर्णनका उपक्रम—जो पुरुष सम्यग्दर्शनसे शुद्ध है, संसार, शरीर और भोगोंसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उदासीन है, पंचपरमेष्ठी गुरुके चरणोंकी शरण जिसने ग्रहणकी है, सन्मार्गमेंजो जो आचरण बताए गए हैं उन आचरणोंको पालने वाला है, मोक्षमार्गमें अवस्थित है वह दार्शनिक श्रावक कहलाता है। यहां दार्शनिकसे अर्थ न्यायवाला नहीं, किन्तु सम्यग्दर्शनकी सिद्धिवाला श्रावक कहलाता है। सम्यग्दर्शनकी अपूर्व महिमा है। जिस जीवके सम्यक्त्व है वह पवित्र जीव है। जिसके सम्यक्त्व नहीं वह धर्मके नामपर कितनीही क्रियाएँ चेष्टाएँ करता रहे किन्तु वह धर्मके मार्गमें नहीं है, उसेतो एक अच्छा शौक लग गया है। जैसे किसीको बुरे शौक लगा करते हैं इसको अच्छा शौक लग गया है, परसम्यग्दर्शन पाए बिना वह धर्म मार्गमें नहीं है।

सम्यग्दर्शनके लाभके उपायमें प्रथम उद्यम वस्तुस्वरूपका यथार्थ विज्ञान—सम्यग्दर्शन पानेके लिए प्रयत्न क्या होना चाहिए? सर्वप्रथम प्रयत्न यह है मनुष्योंकाकि वे वस्तुस्वरूपका निर्णय करें। वस्तुस्वरूपके निर्णयके बिना सम्यक्त्व नहीं बनता। वस्तुस्वरूपका निर्णय होता है स्याद्वाद परमागमसे। जैन शासनमेंदो चीजें ऐसी कही गई हैंकि जिनके स्वरूपका वर्णन जैन शासनमेंही मिल पाता है और वह जीवनके उद्धारके लिए परमावश्यक है। वेदो बातें हैं स्याद्वाद और अहिंसा। स्याद्वादसेतो विचार शुद्ध होते हैं और अहिंसासे आचार शुद्ध होता है। यों भाषणोंमें सभी कोई कहते हैंकि अपना आचार विचार शुद्ध रखना चाहिए पर कहनेसे क्या होता है? आचार विचार किस तरह शुद्ध रह सकते हैं उसका उपायभीतो होना चाहिए। उसका उपाय स्याद्वाद और अहिंसाही है।

स्याद्वादके आश्रयसे वस्तुस्वरूपका सुज्ञान—स्याद्वादसे विचार पवित्र बनते हैं। स्याद्वाद कहते हैं अनन्त धर्मात्मक वस्तुमें अपेक्षासे धर्मको निहारना। यह स्याद्वाद है, जैसे जीवद्रव्य नित्य है व अनित्य है, एक है व अनेक है, सत् है व असत् है, अनेक धर्म इसमें पाए जाते हैं। अबवे धर्म किस अपेक्षासे हैं, उन अपेक्षावोंको पहिचानकर उन अपेक्षावोंसे उनमें उनसब धर्मोंका परिचय करना, बताना यह स्याद्वाद कहलाता है। संसारमेंजो विरोध, विवाद, झगड़ा, विसम्वाद फैला है यदि स्याद्वादका आश्रय लियाहोतातो विवाद झगड़ा, विसम्वाद न फैलता। जैन दर्शनका सारे विश्वके लिए कितना उपकार हैकि उसके बिना इस जीवनमेंभी झगड़ा न मिटेगा और सदाके लिएभी जन्ममरणका झगड़ा न मिटेगा। ऐसी अपूर्व देन इस जैन शासनसे प्राप्त हुई। इसकी कृपा बिना जीव कभीभी सुखी नहींहो सकता। जिन्होंने इस जैन शासनका वरदान पाया है उनका अन्तः करण कह उठता हैकि इस जिनवाणीके उद्धारके लिए मेरा तन लगे, मन लगे, प्राण लगे फिरभी मैं उससे उऋण नहीं हो सकता।

अकलंक निष्कलंकका जिनशासनकी भक्तिमें विपत्तियोंसे संघर्ष—अकलंक और निष्कलंक देवने इस जिनवाणीके प्रसारके लिए अपना कितना बलिदान किया। जबवे बौद्धशालामें पढ़ते थेतो एक दिन गुरु पढ़ा रहा था। जब स्याद्वादका प्रकरण आयातो वहां कोई शब्द अशुद्ध था। उस अशुद्धके कारण गुरु जराभी आगे न बढ़ सकता थातो यह कहकर छोड़ दियाकि इस प्रकरणको कल बताएँगे, शास्त्र बंद कर दिया और चला गया। यहां अकलंक निष्कलंकने अकेलेही एकान्त पाकर उस शास्त्रको खोला, उस स्याद्वादके प्रकरणको पढ़ा, उसमेंजो अशुद्धिथी उसको दूर कर दिया। केवल एक अक्षर शुद्ध करनेकी आवश्यकता थी और ज्योंका त्यों शास्त्र बंद करके वे अपने स्थान पर चले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गए। छात्रावासमें रहते थे, दूसरे दिन गुरुजीने जब वह प्रकरण खोला और उसमें देखाकि एक अक्षर लिखकर शुद्ध किया गया है तोवह तुरंत ताड़ गयाकि इन बालकोंमें कोई जैन बालक रह रहा है। इतनी बुद्धि और किसमें जगेगीकिजो एक अक्षरकी अशुद्धिको शुद्ध करदे। उस समय बौद्ध शासनका जोर था, बौद्ध राजा था। अन्य धर्म वाले यदि सिर उठाते थे, अपना प्रचार करते थेतो उनको दण्ड दिया जाता था, जेल भेजा जाता था, मृत्युदण्ड भी दिया जाता था। गुरुने खबर राजाको भेजी, पता लगाने का आर्डर दियातो गुरुने उन जैन बालकोंका पता लगानेके लिए एक उपायतो यह किया कि एक दिगम्बर जैन मूर्ति कहींसे लाकर रखदी और यह आदेश दिया सब बालकोंकोकि इस मूर्तिको सब लांघेंगे। अकलंक निष्कलंक बड़ी परेशानीमें आ गए, फिरभी जिनवाणीके प्रति इतनी भक्तिथीकि एक रास्ता निकाल लिया। चाहे उसमें थोड़ा अविनयभी होतो भी जिनवाणीके प्रचार प्रसार करनेके लिए उन्होंने वह चोट भी सही। सब बालक उस प्रतिमाको लांघ गए। जब अकलंक निष्कलंककी बारी आयीतो उन्होंने क्या कियाकि अपने कपड़ेका एक धागा निकाला और उस मूर्ति पर डालकर और कल्पना यह करकेकि मैं देवकी अविनय नहीं कर रहा हूं। उस प्रतिमाको परिग्रही बना दिया, अब यह निष्परिग्रह न रहा, कोई उपायतो करनाही था, सोवेभी उसको लांघ गए। गुरुको जैन बालकका कुछ पता न चला। तब गुरुने एक काम और कियाकि रात्रिके चार बजे जबवे बालक सोकर उठतेथे उससेभी आधा घंटा पहले दूसरी मंजिल पर पचासों थाली रख दिए और एकदम चार बजे सब थाली गिरा दिया। बड़ी तेज पीड़ा हुई, सब बालक चौंक गए, सभी अपने इष्टका स्मरण करने लगे, सुगुतायनमः बुद्धाय नमः आदि। और अकलंक निष्कलंकभी एकदमसे उठकर णमोकार मंत्र पढ़ने लगे। अचानक जब कोई विपत्ति आती हैतो जैसा दिल होता है वैसीही उनकी आवाज निकलती है। बस उन्हें पकड़ लिया गया और तत्कालही जेलमें बंद करा दिया गया।

जिनशासनके प्रसारकी शुभकामनामें अकलंक निष्कलंकका अपूर्व बलिदान—दोनों भाइयोंको जेलमें दिनभरहो गया, रातभी आधी होगई। अकलंक निष्कलंक बड़ी चिन्तामें पड़ गए। उन्हें प्राण जानेका खेद न था किन्तु खेद था जिनवाणीके प्रसार प्रचारका कार्य न कर सकनेका। सोवे उस चिन्तामें थेकि वहां चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुई और उसने बतायाकि ऐ बालकों तुम चिन्ता न करो, अभी १०—१५ मिनटके अन्दरही तुम इस सींखचे से निकल जावो। उस देवीने मायासे पहरेदारको सुला दिया, जेलका फाटक खुल गया और अकलंक निष्कलंक आधी रातकोही वहांसे चल दिए। जब सवेरा हुआ और देखाकिवेदोनों लड़के जेलमें नहीं हैंतो राजाको खबरदी। राजाने चारों दिशावोंमें नंगी तलवारें लिए घुड़सवार भेजे और कहाकि जहांवे दोनों लड़के मिलें, उनका सिर काटकर लावो। वे घुड़सवार चारों ओर दौड़ गए। ८.९. बजे सुबह अकलंक निष्कलंक आगे बढ़ते चलेजा रहे थे। पीछेसे देखाकि बड़ी आवाजआ रही है, घोड़े दौड़ेआ रहे हैं, तो मालूम पड़ाकि ये लोग हम दोनोंका सिर काटनेआ रहे हैं, तो उस समय अकलंकने निष्कलंकसे कहाकि देखो यह तालाब है, इसमें कमल वन है, इस कमलबनमें तुम छिप जावो। तो निष्कलंक कहता हैकि हे बड़े भाई आपही छिप जावो। उन दोनोंमें होड़हो गई, एक कहेकि तुम छिप जावो, दूसरा कहेकि तुम छिप जावो। तब निष्कलंकने अकलंक के पैर पकड़कर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और जिनशासनके प्रचारकी भीख मांगकर कहाकि हे भाई आपको एक बार सुननेमेंही विद्याआ जाती है और मुझेदो बार सुननेमें विद्या आती है। अब मुझे भीखदो, आप इस कमलवनमें छिप जाइए। अब देखो निष्कलंकने उस समय कितना बड़ा त्याग किया अपने प्राणोंकीभी परवाह न करके अपने प्राणविसर्जनके लिए तैयारहो गया और उससेभी अधिक अकलंकका त्यागकि अपनी आंखों देखते-देखते जिनशासनकी भक्तिमें अपने छोटे भाईका प्राणविसर्जनभी तक रहा है। दोनों बड़े त्यागी पुरुष, आखिर वह निष्कलंक आगे चलातो एक जगह एक धोबीका लड़का एक तालाबमें कपड़ेधो रहा था, सो डरके मारे वहभी साथ लग गया। वहां एक घुड़सवार आया और तलवारसे दोनोंका सिर उड़ा दिया। उसने उन दोनोंकोही अकलंक निष्कलंक जाना। और सिर काटकर राजाके दरबारमें पेश किया। आखिर तालाबमें छिप जानसे अकलंक बच गए। फिर अकलंकने अपनी विद्या विज्ञानके बलसे जो जैन शासनका प्रसार किया उसेतो विद्वज्जन जानते हैं जिन्होंने जैन शासन, जिनागम व जैन साहित्यका परिचय पाया।

जिनागमके अनुरागका लाभ—प्रत्येक मन्दिरमें यदि कई हजारोंकाभी साहित्य रखा जाए, कोई भलेही उन्हें न पढ़े फिरभी आस्थासे, विनयसे ज्ञानके प्रति सद्भावहोतो उससेभी जीव बड़ा फल प्राप्त करता है। प्रतिमाकेभी हम दर्शन करते हैं या और कुछ कर लेते हैं। यदि मन्दिरमें जिनागमके हम केवल दर्शनही कर पाएँतो यह देवदर्शनसे कम बात नहीं है और फिरजो लोग विद्वान हैं वे यदि एकही ग्रन्थ पढ़कर अपना सम्यक्त्व लाभले पाते हैंतो यह कितना बड़ा उपकार है जैन शासनका। इस जैन साहित्यमें जिनको रुचि नहीं जगती उनको ऐसा ज्ञान कैसे प्राप्त होगा? जिनको आज विशेष ज्ञान है उन्होंने पूर्व भवमें ज्ञानका समर्थन किया था। ज्ञानके प्रति भक्ति बनाया था, उसका फल हैकि आज ज्ञान मिला है। तो सम्यग्दर्शनका जो प्रारम्भ करना चाहता है उसका कर्त्तव्य हैकि जिनागमका अध्ययन करें, वस्तुस्वरूपका परिचय बनाएँ। तो सर्वप्रथम स्याद्वाद द्वारा वस्तु स्वरूपका निर्णय करना इन मनुष्योंके लिए अतीव आवश्यक है।

स्याद्वादका प्रयोग—स्यात्का अर्थ है अपेक्षा और वादका अर्थ है कहना। अपेक्षासे वस्तुस्वरूपका वर्णन करना स्याद्वाद कहलाता है। और अनेकान्त जिस वस्तुमें अनेक अन्त हैं, (सभी वस्तुवोंमें अनेक धर्म हैं) सो वस्तुको कहते हैं अनेकान्त। अनेकान्त नाम है पदार्थका और स्याद्वाद नाम है प्रतिपादनकी शैलीका। तो जैसे जीव नित्य है, अनित्य है वह अपेक्षा देखनी होगीकि एकही जीवमें नित्य और अनित्य, ऐसेदो विरुद्ध धर्मजो कहे जा रहे सो वह किसी अपेक्षासेही सम्भव है। द्रव्यदृष्टिसे देखने पर जीव सदा रहता है। नित्य है, एक रूप है, वह बदलता नहीं है, किसी अन्य द्रव्यरूप नहीं होता। परिणमनोंको द्रव्यार्थिकनय नहीं देख रहा है और उस द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे जीव नित्य और पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे जीव अनित्य है। क्योंकि जीवमें प्रति समय नए-नए परिणमन चलते हैं। अर्थात् नवीन परिणमनका उत्पाद पूर्व परिणमनका व्यय यह व्यवहार होता रहता है। तो पर्यायार्थिक दृष्टिसे जीव अनित्य है, आज इसी बातको लेकर दार्शनिकोंमें विरोध छाया है, और जहां ऐसे पुरुषोंमें विरोध छाया है तोछोटे पुरुषोंमेंभी विरोध आ गया और जिस विरोधका इतना खोटा परिणाम थाकि आज चाहे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धर्मकी श्रद्धा न होनेसे समझ लीजिए कि समन्वयकी दुहाई दी जा रही है। नहीं है विशेष ज्ञानतो कहते हैंकि अजी चाहे जिस धर्मको मानकर चलो, आखिर पहुंचना सबको एक ही जगह है। तो भाई मोक्ष पहुंचनेके अनेक मार्ग नहीं हैं। उसका मार्गतो केवल एकही होता है।

मोक्षमार्गकी आत्मनिष्ठता—मोक्षमार्ग किसी सम्प्रदायसे सम्बन्ध नहीं रखता, उसकातो आत्मासेही सम्बन्ध है, और जितने पुरुष हैं वे सब आत्मा हैं, इसलिए मोक्षका मार्ग निष्पक्ष होता है और आत्माके नातेसे होता है। कहीं कुलके नातेसे, सम्प्रदायके नातेसे मोक्षमार्ग नहीं होता। वह मोक्षमार्ग क्या है? तो संक्षेपमें यह समझ लीजिएकि मोक्षके मायने हैं छुटकारा, आत्माका छुटकारा। किससे छुटकारा? जिससे बंधन है उससे छुटकारा। किससे बंधन है? शरीर, कर्म और विकारये तीन बंधन जीवके साथ लगे हैं। उन तीनों बंधनोंसे छुटकारा होनेका नाम है मोक्ष, और ऐसा मोक्षपानेका जो उपाय है उसे कहते हैं मोक्षमार्ग। क्या चाहिए? छुटकारा। छुटकारा चाहने वालेको यहतो श्रद्धा होनी चाहिएकि मेरा छुटकाराहो सकता है, ऐसा निर्णय करने वालेको यहांही स्वरूपमें छूटा हुआ नजर आना चाहिए। सो इनसबमें मिला हुआ यह आत्मा अपने स्वरूपसे सर्वसे निराला है, स्वतंत्र सत् है, अपने आप इसकी सत्ता है। इसके स्वरूपमें दूसरा कुछ मिला नहीं है इसलिए छूटा हुआ ही है, ऐसा अनादि मुक्त स्वभाव दृष्टिका मुक्त यहां नजर आया, तो परिणमन दृष्टिसे मुक्तभीहो जाएगा। पर जिसको यहांही अपने स्वतंत्र अस्तित्त्वका विश्वास नहीं है उसके स्वतंत्रता कभी होही नहीं सकती। तो मोक्षका मार्ग है कि अपने आपके सहज स्वरूपका विश्वास हुआ।

स्याद्वादका सन्मार्गदर्शकता व रक्षकता—अपने सहजस्वरूपका विश्वास कैसे प्राप्त हो, इसके लिए चाहिए वस्तुस्वरूपका ज्ञान और वह ज्ञान होगा स्याद्वादसे। यही चौकी जिसपर हम बैठे हैं, पूछेंकि बताओ यह चौकी कैसी है? तो कोई कहेगाकि यह चौकी ढाई फिट लम्बी चौड़ी है। लम्बी चौड़ी न कहकर यहतो ढाई तीन फिटकी है। कोई कहेगाकि यहतो बस एक फुटकी है। अब दोनोंमें झगड़ा शुरुहो गया। एक कहताकि तू झूठ बोलता है, दूसरा कहताकि तू झूठ बोलता है। तोअब उन दोनोंका झगड़ा निपटायगा स्याद्वाद। वह समझायगाकि लम्बाई चौड़ाईकी दृष्टिसे साढ़े तीन फिटकी है। ऊंचाईकी दृष्टिसे १ फुट है। बस दोनोंका विवाद खतम। तो स्याद्वादका सहारा लिए बिना व्यवहारमेंभी झगड़ा नहीं निपटता। झगड़ेकी जड़ है स्याद्वादके विरुद्ध चलना। कितनेही घरोंमें देखा जाताकि लोग बड़ी क्रूरतासे एक दूसरेके साथ कैसे पेश आते हैं और कहोवे बड़े प्रेमके कारणही वचन निकले हों। जो ऐसे आशयोंको नहीं समझ सकते उनमें विरोधहो जाता है। समस्त विरोधको मिटाने वाला है स्याद्वाद। विश्वका रक्षक हैतो स्याद्वाद। और देखिए स्याद्वादके सहारे सब लोग जीवित रह रहे हैं फिरभी स्याद्वादका आभार नहीं मान सकते। किन्हींकोतो ज्ञानही नहीं है और जिनको ज्ञान है उनको अपने कुल धर्मका पक्ष है इसलिए स्याद्वादके बलपरहीतो हम जीवित हैं। और उस स्याद्वादका नाम लेकर चर्चा आयेतो वह विरुद्ध जंचती है। तोयह स्याद्वाद विश्वका रक्षक, आत्माका रक्षक, वस्तुस्वरूपका सही परिचय कराकर मोक्षमार्गमें लगाने वाला है। इस स्याद्वादके उपकारसे हम कभी उऋण नहींहो सकते।

द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक दृष्टिसे वस्तुस्वरूपका निर्णय कर सम्यक्त्व लाभ पाकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सदाचारकी ओर अभिमुखता—दर्शन प्रतिमाधारी श्रावकका लक्षण कहाजा रहा है कि जिन्होंने सम्यक्त्व पाया है वेही इस प्रतिमाके धारी अधिकारी बन पाते हैं। सम्यक्त्व पानेके लिए वस्तुस्वरूपका सही ज्ञान होना आवश्यक है, अन्यथा समस्त परद्रव्योंसे हटकर, परभावोंसे हटकर निज सहज स्वभावमें मग्न होनेकी बात कैसे बनेगी? तो सम्यक्त्वके लिए वस्तुस्वरूपका निर्णय चाहिए। वस्तुस्वरूपका निर्णय स्याद्वादसे होता है। अतः स्याद्वादके आश्रयसे वस्तुका परिचय करना सम्यक्त्व लाभके लिए प्रथम आवश्यक है, स्याद्वादका अर्थ है अपेक्षासे कहना। वस्तुद्रव्यपर्यायात्मक होता है। वस्तु सदा रहेगा, वह सत् सदैव रहेगा, इसे कौन मेट सकता है? और वस्तुका प्रतिसमय परिणमन चलताही रहेगा, इसेभी कौन मेट सकता है? दो बातें पदार्थमें अत्यन्त आवश्यक है और हैं ही, तभी पदार्थकी सत्ता है। यदि परिणमन न रहेतो पदार्थही क्या और पदार्थकी सत्ता क्या? यदि वह वस्तुही शाश्वत न रहेतो फिर अवस्था किसकी? तो पदार्थ द्रव्यपर्यायात्मक है। इसी कारण पदार्थका निर्णय द्रव्यार्थिकनय और पर्यापार्थिकनयसे होता है। यहां गुणार्थिक नय नहीं कहा गया, उसका कारण यह हैकि गुणतो द्रव्यस्वरूपको समझानेके लिए समीचीन पद्धतिसे स्वभावतः भेद किया गया है। परमार्थतः वस्तु एक अखंड स्वभावरूप है, पर वह समझे क्या? उसे समझाया कैसे जाए? सो प्रभु ने अरहंत देवने, गणधर देवोंने आचार्योंने करुणा करके अज्ञ जनोंको समझानेके लिए गुणभेद किया है। गुणके समझनेके लिए द्रव्यार्थिकनयही काफी होता है, क्योंकि गुण प्रतिपादनके लिए भेद किया गया मात्र है। कहीं गुणोंकी सत्ता नहीं है गुण वस्तुकी तारीफ है। वस्तु एक अखण्ड है और उसका प्रतिसमय परिणमनभी अखण्ड है। जैसे गुण समझानेके लिए बताए गए हैं ऐसेही पर्यायेंभी समझानेके लिए एक समयमें गुणपर्यायोंकी विशेषतासे अनेक हैं। जैसेकि यह पुद्‌गल पीला है, खट्टा है, कोमल है, अनेक पर्यायोंका भेदजो किया है गुणोंके सहारेसे वहभी व्यवहारसे है। वस्तुतः द्रव्य अखण्ड है और प्रति समयका परिणमनभी अखण्ड है। अखण्ड अखण्ड परिणमन प्रति समय होता चला जाता है। तोदो बातें माननी अतीव आवश्यक हुई जैसेकि वस्तुतः है, द्रव्य और पर्याय।

स्याद्वादमुद्रा—द्रव्यसम्बंधित धर्म द्रव्यार्थिक दृष्टिसे जाने जाते हैं, पर्याय सम्बन्धित धर्म पर्यायपार्थिक नयसे जाने जाते हैं। जब जैसे जीव द्रव्यार्थिकनयसे नित्यही है ऐसेही पर्यापार्थिकनयसे अनित्यही है। स्याद्वादकी मुद्रा "भी" से नहीं बनती, किन्तु "स्यात् और एव" से बनती है इस अपेक्षासे ऐसाही है यह है स्याद्वादकी मुद्रा। जैसा आजभी प्रसिद्ध किया जाता है—जीव नित्यभी है अनित्य भी है, यह स्याद्वादकी शुद्ध मुद्रा नहीं है। परजो लोग समझ जाते है, भीके कहनेसे भी उन्होंने द्रव्यार्थिकनयके स्यात् एव को व, पर्यायार्थिकनयके स्यात् एवको समझ रखा है, (अन्डरस्टुड कर रखा है) तब उन्हें भी कामदे रहे हैं। यदि अपेक्षासेहीकी बात उनके निर्णयमें नहो तो 'भी' एकदम गलत है, क्योंकि वस्तुका स्वरूप अपेक्षा देकर अवधारणपूर्वक समझा जाता है। अगर अपेक्षा लगाकर 'भी' कहा जाएतो उससेतो बड़ा अनर्थ बनेगा। जैसे कहा जाएकि जीव द्रव्यार्थिकनयसे नित्यभी है तो इसका अर्थ क्या होगाकि द्रव्यार्थिकनयसे अनित्यभी होगा। यह कितना विरुद्धहो गया। यदि कहा जायकि पर्यायार्थिकनयसे अनित्यभी हैतो इसका अर्थ क्या बनाकि पर्यायार्थिकनयसे नित्यभी होगा। तो 'भी' की मुद्रा स्याद्वादमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न लेना और न शास्त्रमें किसी जगह 'भी' का प्रयोग मिलता है स्याद्वादमें, पर प्रसिद्धिहो गई है और लोग 'ही' कोतो भूल गए और 'भी' को प्रधान करके बताते हैंकि यह है स्याद्वाद।

स्याद्वादमें संशयवादकी नितान्त असंभवता—लोक कभी कभी ऐसा संदेह करने लगते हैंकि स्याद्वादतो संशयवाद है जहांभीका प्रयोग होता है वहां संशयको गुंजाइश हुआ करती है। तोभीके प्रयोगने संशयवादके संशयको बढ़ा दिया है। द्रव्य व पर्याय दोनों रूपसे भली भांति समझना चाहिए, मौलिक ढंगसे समझ करके फिर चाहे कोई 'भी' का प्रयोग करेतोभी वह अपना अनर्थ नहीं कर रहा, क्योंकि भीतरमें इतना समझ रखाहैकि इस भी के बीचमें द्रव्यार्थिकनयका स्यात् एव पड़ा है और पर्यायर्थिक नयका स्यात्एव पड़ा है, और इसी आधारपर 'भी' की प्रसिद्धि कुछ समयसे चली आयी। पर स्याद्वादकी सही मुद्रा है 'स्यात् एव' इनदो शब्दोंके बीचमें नित्यका प्रयोग करना चाहिएयाजो सिद्ध करना है। जैसे जीवः स्यात् नित्य एव, जीव किसी अपेक्षासे नित्यही है, जीवः स्यात् अनित्य एव, जीव किसी अपेक्षासे अनित्यही है, सो बिल्कुल स्पष्ट है। द्रव्य दृष्टिसे नित्यही है, पर्यायदृष्टिसे अनित्यही है। यदि भी की मुद्रा यहां व्यवहारमें भी लगाने लगे कोईतो बड़ी मजाक चल उठेगी। जैसे मानो घरमें कोई तीन लोग हैं—(१) सुरेश, (२) नरेश और (३) महेश। सुरेशतो है बाबा, नरेश है लड़का और महेश है पोता। अब वहां कोई यदि इस तरह बोलने लगेकि यह महेश नरेशका पुत्रभी है, तो क्या अर्थ निकलाकि नरेशका बाप भी होगा। देखिए इतनेमें कितना अनर्थहो गया। यह नरेश महेशका पिताभी है, तो अर्थ निकलेगाकि नरेश महेशका पुत्रभी होगा बाबाभी होगा। एक मोटे रूपमें लेलो बाबा, पुत्र और पोता। पुत्रकी पहिचान कराना है तो कोई कहेकि यह पोतेका बापभी है तोइसके मायने पोतेका पुत्रभी होगा। यह इस तरह अपने बापका लड़काभी है,तो इसके मायने हैकि वह अपने बापका बाबाभी होगा। तो लोक व्यवहारमें यदि स्याद्वादके रूपमेंभीका प्रयोग किया जाएतो वहांतो मजाक चल उठेगा। स्याद्वादमें 'भी' का स्थान नहीं है किन्तु 'ही' का स्थान है और वह है अपेक्षा लगाकर।

अपेक्षा और अवधारणकी पूर्वापरतासे स्याद्वादकी सम्हाल—स्याद्वाद एक बड़ी घाटी है, इसपर चढ़ना और उतरना यह खतरेसे खाली नहीं है। जैसे किसी बड़ी तेज पहाड़ी पर, रेल जातीहोतो रेल जानेमें और आनेमें आगे पीछेदो इञ्जन चाहिए तब बिना धोखेके पहुंच पाएगी गाड़ी। जब नीचे उतरती है तबतो दो इञ्जन बहुतही आवश्यक हैं। नीचेका इञ्जन खींच रहा हैतो ऊपरका इञ्जन अपनी ओर खींच रहा है ताकि इसका एकान्त वेग न बन जाय, नहींतो गड्ढेमें गिरेगी। ऐसेही वस्तुके किसी धर्मका निर्णय करनेके लिए उसके पीछे स्यात्का इञ्जन लगता है और आगे एवका इञ्जन लगता है, बीचमें वह धर्मका डिब्बा रखा जाता है—स्यात् नित्य एव। द्रव्यार्थिक दृष्टिसे जीव नित्यही है, पर्यायार्थिक दृष्टिसे जीव अनित्यही है, इसी प्रकार जीवोंमें जोभी सिद्धान्त नाना दार्शनिक कहते हैंवे सब स्याद्वादसे प्रथम आधारमें सिद्धहो जाते हैं। पर एकान्त होनेके कारण उसका रूप बिगाड़ लेनेसे वह निर्णयकी कोटिमें नहीं रह पाता। जैसे कोई कहता हैकि जीव एक है, कोई दार्शनिक कहता हैकि जीव अनेक हैं, एकही जीवके बारेमें बात कर रहे हैं अथवा कोई अनेक जीवोंको एक कह रहा होतो अब निर्णय देखिए स्याद्वादसे। जब अनेक जीवोंको स्वरूप दृष्टिसे देखातो क्या उनका भिन्न-भिन्न सत्त्व दृष्टिमें रहेगा?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यद्यपि सत्त्व भिन्न-भिन्न है, किन्तु जब केवल स्वरूपमात्रकोही निरख रहे हैंतो वहां भिन्न-भिन्न सत्त्व नजर नहीं आते। और यह भी नजर नहीं आताकि सबका मिलकर एक सत्त्व है, किन्तु चैतन्यस्वभाव दृष्टिमें आता है और इस स्वरूपदृष्टिसे जब जीवका एकत्व ज्ञात हुआसो ज्ञाततो हुआ, कहनेमें न आया। कहा गया बादमें कि वहांतो कोई विलक्षणता ज्ञात न हुई। तोस्वरूपदृष्टिसे देखते हैंतो स्वरूप एक समान होनेसे एक है। एकका अर्थ समानभी होता है। संस्कृतकोषमें एक-एकको भी कहते हैं और एक समानको भी कहते हैं। जैसे कहते हैंकि ये सबतो एक ही हैंतो क्या गिनतीमें एक है? सबका भाव एकसा है समान है। तो सब जीवोंमें एकपनाजो दार्शनिक मानते हैं वेस्वरूपदृष्टिसे चले और चलकर फिर उन्होंने अपना रूप बिगाड़ा, योंभी एक दर्शन बन गया। कोई दार्शनिक एक जीवमेंही अनेक जीव मानते हैं। वे एक जीव नहीं हैंतो उसका आधार स्याद्वादमें क्या है? पर्यायार्थिकनय। जब एक जीवको पर्यायदृष्टिसे निरखते हैंतो प्रति समयका पर्याय भिन्न-भिन्न है। तो पर्यायरूपसे देखा हुआ वह तत्त्व सब भिन्न-भिन्न लक्षण वाला है। इस आधारसे कोई चला और चलकर हठकर गया, और रूप बिगाड़ लियातो वह ऐकान्तिक बन गया, पर स्याद्वाद एक ऐसा मित्र हैकि विश्वके समस्त दार्शनिकोंको एक मंचपर आरामसे बैठा देते हैं।

पदार्थमें मौलिकदो निर्णयोंकी अपेक्षाका दिग्दर्शन एवं एक साथ कहना अशक्य होनेसे अवक्तव्यता—स्याद्वादमें मूलमेंदो निर्णय बताए गए, एक द्रव्यार्थिक दृष्टिका निर्णय और एक पर्यायार्थिक दृष्टिका निर्णय। पर कोई यह प्रश्न पूछेकि हमकोतो तुम एकही बारमें, एक ही शब्दमें बतला दो कि जीव कैसा है? आप पहले कहतेहोकि द्रव्यार्थिक दृष्टिसे नित्य है फिर कहते पर्यायार्थिक दृष्टिसे अनित्य है, तोऐसी दो बातें हम नहीं सुनना चाहते। आप हमको एकही शब्दमें, एकही समयमें वस्तु कैसा है यह बतलाइये। तो क्या यह बतायाजा सकता है? दुनियामें कोई शब्द है क्या ऐसाकिजो वस्तुके स्वरूपको एक शब्दमें बता दे? शब्दही पक्षपात करते हैं पहलेतो। अथवा शब्द वस्तुके स्वरूपमें भेद बताते हैं। आप किस शब्दसे पदार्थको कहेंगे? आपने कह दियाजीव।तो जीवशब्दसे वह पदार्थ जिसको हम चाहते क्या पूरा जान लिया गया? जीवके मायनेतो यह हैकि जो प्राणोंसे जीवेसो जीव, पर जीवमें क्या अन्य कोई विशेषताएँ नहीं हैं? सम्यक्त्व छोड़ दिया, सारी बातें छोड़दीं उस जीवशब्दने। तो जीव शब्दभी जीवको अच्छी तरह नहीं कह सकता। कोई कहे आत्मा, तो आत्माका अर्थ हैकि 'अतति सतत गच्छति जानाति इति आत्मा', जो निरन्तर जानता रहेसो आत्मा। तोइस आत्मा शब्दने क्या उस जीव पदार्थको पूरा बता दिया, उसनेतो जानने जाननेकी ही बात कही, पर उसमें रमनेकी शक्ति है आस्थाकी आदत है। आनन्दभी उसका धर्म है, यहतो आत्मा शब्दने नहीं कहा। कोई शब्द नहीं है ऐसाकि जो वस्तुको पूर्णतया कह सके। तो द्रव्यार्थिक दृष्टिसे नित्य और पर्यायार्थिक दृष्टिसे अनित्य जिसके सम्बन्धमें कह रहे उस जीवको एक शब्दसे बताया नहींजा सकता इस कारण वह अवक्तव्य है। कोई कहेकि लो तुमने अवक्तव्य शब्दसेतो बता दिया, अभी कह रहेथेकि कोई शब्द ऐसा नहीं हैजो पदार्थको ठीक बता सके। अरे भाई अवक्तव्य शब्दभी सही नहीं है जीवको बतानेके लिए। कैसे? अवक्तव्यका अर्थ है जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहा न जा सके, पर तुमतो अवक्तव्य अवक्तव्य कहतो रहे हो। कैसे कहाजा सकता हैकि अवक्तव्य शब्द इस जीवको पूरा बता सकता है?

स्याद्वादमें सप्तभङ्गी—इन तीन धर्मों द्वारा जीवको समझा, जीव नित्य है जीव अनित्य है, जीव अवक्तव्य है, जब ये तीन धर्म समझे गएतो इनका कोई संयोग करके समझेतो चार पद्धतियां और बन जाएँगी। इनमें संयोगदोका हो सकता है, तीनका हो सकता है, तब यह समझा गयाकि जीव नित्य है, अनित्य है, अवक्तव्य है और नित्य अवक्तव्य है, अनित्य अवक्तव्य है, नित्यानित्य है और नित्यानित्य अवक्तव्य है। इसीको कहते हैं सप्तभंगी। जहां तीन बातें स्वतंत्र हों वहां उसके ढंग ७ बनते हैं। जैसे मानो खानेकी तीन चीजें रखलो नमक, मिर्च, ककड़ी। इनमें आप केवल नमकका स्वादले सकते, केवल मिर्चका स्वाद ले सकते, केवल ककड़ीका स्वादले सकते, नमक ककड़ीका स्वादले सकते, मिर्च ककड़ीका स्वादले सकते, नमक मिर्चका स्वादले सकते और नमक मिर्च ककड़ीका स्वादले सकते। तो ऐसेही जब इस जीवके तीन धर्म स्वतंत्र विदित हुएतो उनके ७ रूप बन गए जाननेके लिए।

प्रयोगात्मक पद्धतिसे आत्माकी चार परखें—उन सप्तभंगोंमें भी मुख्य प्रयोजन तीनसे बन जाता है। द्रव्यदृष्टिसे जीव नित्य है, पर्यायदृष्टिसे जीव अनित्य है। जब कुछ अनुभव करने बैठेंगेतो वह जीव न नित्य है, न अनित्य है अर्थात् अनुभव है। ऐसी तीन बातें अधिक हम आपके प्रयोगमें आती हैं और साथही एक बात और समझनाकि नित्य और अनित्य दोनोंको समदृष्टिसे परखा जायतो एक प्रमाण बन जाता है तो हम चार प्रकारसे अपनी परख कर पाते हैं, जैसे आदमीकेदो आंखें हैं। उनमेंसे दाहिनी आंख बंद करके बाईं आंखसेही देखेंतो यहभी एक देखनेकी पद्धति है, बाईं आंख बंद करके दाहिनी आंखसे देखेंतो यहभी देखनेकी पद्धति है, कोई दोनों आंखें खोलकर देखेतो वहभी पद्धति है और कोई दोनों आंखोंको बंद करके देखेतो वहभी देखनेकी पद्धति है, उसमें चाहे स्वरूप देखेया सामान्य प्रतिभास देखे। तो जैसे देखनेकी चार विधियां हैं ऐसेही समझनेकीभी चार विधियां हैं। द्रव्यार्थिकनयसे जानिए, पर्यायार्थिकनयसे जानिये, इन दोनोंसे जानिये और इन दोनोंको छोड़कर केवल अपने अनुभवसे जानिये। तो स्याद्वादसे वस्तुको समझकर यही प्रक्रिया बनती हैकि वस्तुतो असलमें द्रव्य पर्यायात्मक है। यहतो प्रमाणसे समझा, पर उसके अन्तर्गत यहभी जानेंकि द्रव्यात्मकतो द्रव्यार्थिकनयसे है और पर्यायात्मक पर्यायार्थिकनयसे है। तो अब क्या करना जानकर। भाई समझ गए और हर तरहसे सर्व पदार्थोंको जान लिया और साथही यहभी जान गएकि एकका दूसरेमें कुछभी नहींहो सकता है, क्योंकि सब द्रव्य अपने अपने द्रव्य पर्याय रूप हैं। तब सर्वपरका विकल्प छोड़कर और अपने आपमें द्रव्यरूप हूं, पर्यायरूप हूं, द्रव्यपर्यायात्मक हूं। ऐसेभी विकल्पको छोड़कर जो निर्णय किया है उस निर्णयमेंजो स्व जीव पदार्थ आया है बस विकल्प तजकर उसहीको निरखता रहे, ऐसे अपने सहज स्वरूपको अनुभवनेसे सम्यग्दर्शन होता, अथवा यहीतो सम्यग्दर्शन है। ऐसे स्वभावका आश्रय करनेसेजो बात बननी है वह सहज बनेगी, सम्यक्त्वघातक ७ प्रकृतियां दुर्बल बनेंगी, क्षीण होंगी, नाशको प्राप्त होंगी, सम्यक्त्व मिलेगा, मगर करनेका काम एकही है, निजसहज स्वभावको आत्मारूपसे अनुभवना। तो यह सम्यग्दर्शन जहां प्राप्तहो गया है और उस आचरणमें बढ़नेका प्रारम्भ किया है वही दर्शन प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।

Version 1

दार्शनिक श्रावकके देवत्वका यथार्थ श्रद्धान—श्रावक के ११ दर्जोंमें पहला दर्जा है दार्शनिक श्रावक। इस प्रतिमामें सम्यग्दर्शनकी मुख्यता है, चूँकि सम्यग्दर्शनके बिना कोई व्रत नहीं कहलाता। सम्यग्दृष्टिही मोक्षमार्गमें गमन करता है, इस कारण प्रथम प्रतिमाधारी वही होता हैजो सम्यग्दर्शनसे सम्पन्नहो। इस सम्यग्दर्शनके लाभके लिए क्या करना चाहिए? तो अभी बतलाया गया थाकि वस्तुस्वरूपका सही ज्ञान करना चाहिए और केवल इतनाही नहीं किन्तु देव, शास्त्र, गुरुका श्रद्धान चाहिए। व्यावहारिक रूपसे श्रद्धातो होनी ही चाहिए तब सम्यग्दर्शन होगा, सो इससे सम्बंधित देव, शास्त्र, गुरुका थोड़ा वर्णन जानना आवश्यक है। देव वह कहलाता है जिसके आत्मामें गुणतो पूरे प्रकट हो गए हों और दोष रंचमात्रभी न रहाहो। भला बतलावो, यदि यह कहाजायकि आत्माके गुण पूरे नहीं प्रकट हैं उसे देव कहते हैं, तो कोई मान लेगा क्या? योंतो हम आप सभी संसारी जीव हैं। आत्माके गुण सबमें हैं, और प्रकट हैं। पर पूर्ण प्रकट होना और अधूरे प्रकट होना इसमें बड़ा अन्तर है। दूसरी बात सोचिए, यदि कहा जाएकि आत्मामें दोष रंच न रहें इसकी क्या आवश्यकता? जिसमें बहुतसे दोष न रहें वह हमारा देव है। तो इसेभी कोई नहीं मान सकता। जैसे किसीभी दूसरे लोगोंसे जो रागी द्वेषी देव मानते हैं यदि इस तरह पूछा जाएकि जिसमें गुण पूरे न हों वह देव होगा क्या? तोवह कहेगा नहीं। जिसमें दोष पूरेन हटें वह देव होगा क्या? तो उत्तर होगा? ··· नहीं। भलेही कुल धर्मके हठके कारण रागद्वेष करने वालेके रूपमेंही देवको माने और भक्ति करें पर लक्षणतः भक्तिकी जायतो सबको सही बात कहनी पड़ेगी। तो देव वह है जिसके गुण समस्त प्रकट हों, पूर्ण प्रकट हों और दोष रंचमात्र भी नहों, तो समस्त गुण प्रकट होगए, उसका प्रतिनिधि विशेषण है सर्वज्ञ। जो सर्वको जानने वाला है वही आनन्द वाला है, अनन्त दर्शनवाला है, पूर्ण विकास है, तो पूर्ण विकासको बताने वाला प्रतिनिधि रूप विशेषण है सर्वज्ञ और दोष रंचमात्रभी नहीं है, इसको बताने वाला शब्द है वीतराग।

वीतरागतामें समस्त रागद्वेषसे रहितताका द्योतन—जहां राग न रहा वहां कोई दोष नहीं रहता, क्योंकि रागके अतिरिक्त जितनेभी दोष हैं वे सब दोष राग मिटनेसे पहले खत्महो जाते हैं। सभी दोषोंके खतम होनेके बाद रागका दोष खत्म होता है। तो जहां वीतराग कहा वहां पूर्ण निर्दोष अर्थ अपने आप है। दोष कहलाता है मोहनीय कर्मके प्रभावका। सो सम्यक्त्वघातक कषाय और आशय ७वें गुणस्थान तकमें समाप्तहो जाता है, फिर ९वें गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्या–नावरण कषाय संज्वलन क्रोध संज्वलन मान और संज्वलन माया समाप्तहो जाती हैं। और इतना सारा दोष खत्महो गया सिर्फ संज्वलन लोभ रह गया। वह दशम गुणस्थानके अन्तमें समाप्तहो जाता है। तो जहां वीतराग कहा वहां पूर्ण निर्दोष अर्थ लेना चाहिए। तोजो वीतराग और सर्वज्ञ है वह देव है।

मोक्षमार्गमें देवत्वके परिचयकी अनिवार्य आवश्यकता—देवका परिचय करना क्यों जरूरी है आत्मकल्याण चाहने वालोंको? वह इसलिए जरूरी हैकि आत्मकल्याण चाहने वाला पुरुष बनेगा क्या? अपने बारेमें मैं क्या बनूँगा, कौनसा पद उत्तम है, जिसमेंकि मैं निर्दोष और शान्त आनन्दमय रहूं? वह है अरहंत देव पद पश्चात् सिद्ध देव पद। तोजो मैं बनना चाहता हूं, जोमैं बनूँगा उसकीही जब जानकारी नहीं हैतो इसकी प्रगति होना मुश्किल है। अपने बारेमें कौन नहीं जानता। पूरा न जाने

युक्तिसे न जाने फिरभी अंदाज करते। काहेके लिए व्यापार करते? उसे पतातो हैकि मैं धनिक बनूँगा। काहेके लिए धर्म करते? मन्दिरमें आनेकी रोज-रोज तकलीफ क्यों उठाते? तो संसारमेंजो उत्तम पद है उस पदके पानेके लिए उस पदका ध्यान करते जाते हैं, यह उसका उत्तर है। जोलोग धन, पुत्र मुकदमा आदिकके अभिप्रायसे देवकी पूजा दर्शन करने जाते हैं उनकेतो पापका उदय है। उन्हें कौन समझाए? कैसे समझमें आए? जब मोह पाप चलही रहे हैंतो समझमें नहींआ सकता। निर्वाञ्छक होकरजो देवकी भक्ति करेगा उसकोये बातें भी स्वयं प्राप्त होती हैं औरजो असली चीज है कर्म क्षय, धर्म विकाससो वह होगाही। जैसे किसान ऐसा कोईभी मूर्ख न मिलेगाकि जो भुसही पैदा करनेके लिए खेती करता है। किसीके आशयमें यह बात नहीं रहतीकि मुझे भुस पैदा करना है और वह मैं बेचूंगा, खेती करते हुए ऐसा किसीका अभिप्राय नहीं रहता। अभिप्राय यह रहता हैकि मैं अन्न पैदा करूंगा। तो अन्न उत्पन्न करनेके भावसे खेती करने वाले किसानको भुसतो अपनेआप प्राप्त होता है। ऐसेही वाञ्छारहित आत्मस्वरूपकी श्रद्धा सहितजो देवोंकी उपासना करता है उसको जब तक संसार शेष है तब तक सारी समृद्धियां अपने आप होंगी और धर्ममार्ग मिलेगा। सो अन्तमें मोक्षपद प्राप्त होगा यहतो एक सर्वोत्कृष्ट पद है। तो देवकी श्रद्धा सही होना बहुत आवश्यक है।

धर्मसाधना में तत्त्वज्ञानकी मूल आवश्यकता—भैया, श्रद्धातो है अनेक मनुष्योंकोकि मैं धर्म करूं और धर्मके लिए वे बहुत-बहुत परिश्रमभी करते हैं, पर चाहे उन परिश्रमोंको आधा कर दें, किन्तु तत्त्वज्ञानके अभ्यासमें अपना उपयोग अवश्य लगाएँ, तो यह उनके लिए लाभकारी उपाय है। एक बात बिल्कुल निश्चित समझनाकिजो मनुष्य अपना ज्ञान पानेके लिए उमंग रखता है, दूसरोंको ज्ञान देनेके लिए उमंग रखता है। ज्ञानके साधनोंको बढ़ानेकी जिनकी उमंग रहती है वे जीव क्रमशः इस ज्ञान विकासको पाकर केवल ज्ञान पायेंगे। मनुष्यभवमें महत्त्व दीजिए एक ज्ञानको। बाकी औरभी काम करने पड़ते हैं धर्मके नामपर, पर वे सब आनुषंगिक हैं, और सब प्रकारके त्याग दान करते जायें और एक ज्ञानका लगाव न हो, ज्ञानके लिए हर्ष और उमंग न हो तो वह मार्ग नहीं मिल सकता जिससे संसारके संकटों से सदाके लिए छूट सकते हैं, बाकीका फल इतना अवश्य होगाकि थोड़ा शरीर अच्छा मिलेगा, धन मिल जाएगा, इज्जत मिलेगी मगर रहेंगे संसारकेही संसारमें। ज्ञानकी प्रीति बिना संसारके संकटोंसे छूटना असम्भव है। तो अब जीवका ज्ञान क्यों आवश्यक है? सोजो पद मुझे पाना है, धर्मके फलमें जो बात मेरेमें बनेगी उसका ज्ञानहोनेसे उस कालमेंभी मदद मिलती है और मार्गभी स्पष्ट होता है।

ज्ञानस्वभावका स्वरसतः विकास—देव वह हैजो तीन कालकी गुण पर्यायोंसे सहित समस्त लोकालोकको प्रत्यक्ष जानता है। केवल सर्वज्ञही कह दीजिए देव क्योंकि वीतराग हुए बिना सर्वज्ञ नहींहो सकता। तो जहां आगेकी बात कहदीतो पहलेकी बाततो आही गई। यह आत्मा ज्ञानस्वभाव वाला है, इस पर उपाधिका आवरण है, विधिपूर्वक आवरण दूर होगा, तो ज्ञानमें विकसित होनाही पड़ेगा। दूसरा कोई चाराही नहीं, स्वभावही है ज्ञानका जैसे दरवाजेके किवाड़में स्प्रिंग लगे हैंतो वे मानों बंद रहते हैं, कमरा सुरक्षित रहता है उसके किवाड़ोंको यदि खोला जायतो जब तक आप हाथ से पकड़े खेंचे हुए हैं तब तकतो किवाड़ खुले रहेंगे, पर वह आवरण हट जाए, हाथकी उपाधि हट जायतो उन

Version 1

किवाड़ोंकोतो लगनाही पड़ेगा, वह कमरा सुरक्षित रहेगाही। स्वभाव है आत्माका जानना। इन इन्द्रियोंसे जानना यह स्वभाव नहीं है। सामनेकी चीज जानना यह ज्ञानका स्वभाव नहीं है। केवल पौद्‌गलिक चीजही जानना यह ज्ञानका स्वभाव नहीं है। ज्ञानका स्वभाव है आत्मीय शक्तिसे जानना, ज्ञानका स्वभाव है मनसे परे जानना, तीन कालकी जानना और सबको जानना। स्वभावानुरूप विकासके विरुद्धजो वह अधूरा ज्ञान चल रहा है वह उपाधिके कारण अधूरा है। स्वभावतो आत्माका सर्व सबको जाननेका है, सो जानता है, सर्वज्ञ, यदि सर्वज्ञ न होतातो आज अतीन्द्रिय पदार्थका ज्ञान हम आपको कहांसे मिलता? आज आत्माकी चर्चा कर रहे हैं, द्रव्यकी शक्तियोंका परिचय बना रहे हैं, यह सब सर्वज्ञताके बिना नहीं बन पाता। कौन उपदेश करता? किस तरह जानना? इन्द्रिय ज्ञानमें यह सामर्थ्य नहीं हैकि वह अतीन्द्रिय पदार्थोंको जानले। तो सम्यक्त्व लाभके लिए देव, धर्म और गुरु इन तीनका परिचय करना आवश्यक है।

दार्शनिक श्रावकके धर्मके प्रति श्रद्धान—वीतराग सर्वज्ञदेव द्वारा बताया गयाजो धर्म है वह कल्याणकारी है। धर्म पालनहार पुरुषोंके भेदसेदो प्रकार हैं। एक परिग्रहसहित ज्ञानियोंका धर्म और एक परिग्रहरहित ज्ञानियोंका धर्म। परिग्रहसहित ज्ञानी श्रावक कहलाता है, परिग्रहरहित ज्ञानी मुनि कहलाता है। सो श्रावककाजो धर्म है वह इन ११ प्रतिमावोंके रूपमें कहाजा रहा है। और ११ प्रतिमासे पहले है सम्यक्त्व। तो श्रावक धर्म ११ प्रकारोंमें पड़ा है। सम्यग्दर्शन और ११ प्रतिमा, सम्यग्दर्शन सहित प्रथम प्रतिमाहोतो वह पंचम गुणस्थानमें कहा गया है। जो ज्ञानी पुरुष उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य इन १० धर्मोंका धारी होता है, परिग्रहरहित है, सहज आत्मस्वभावकी ही जिसकी धुन है वह कहलाता है गुरु। ऐसे देव, शास्त्र, गुरुका श्रद्धान होना व्यवहारतः श्रद्धान हुआ। चाहे गुरू आत्मस्वभाव के अनुभव के बिना हो किन्तु हो यथार्थ ज्ञान का धारी तो वह गुरू आत्मस्वभावके अनुभव करानेका कारण बनकर सही श्रद्धानहो जाता है। तो सम्यग्दर्शनको प्राप्त करनेके प्रयत्नशील पुरुष देव गुरु धर्ममें प्रीति रखते हैं वे सम्यक्त्वको पायेंगे। **भव्य संज्ञी विशुद्ध परिणामी जागृत जीवके सम्यक्त्वलाभकी पात्रता**—सम्यक्त्वको पाने वाला जीव किस परिस्थितिका होता है यहभी जानना ताकि अपने बारेमें यह निर्णय बन जाएकि क्या हम सम्यक्त्व पानेकी सामर्थ्यके अधिकारी है? कौन जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है? सर्वप्रथम जिसको सम्यक्त्व प्राप्त होगा वह चारों गतियोंमेंसे किसीभी गतिमें सम्यक्त्वको प्राप्त कर सकता है, होना चाहिए भव्य जीव। नारकी जीवभी सम्यक्त्व प्राप्त कर लेता है, तिर्यञ्चभी सम्यक्त्व प्राप्त करता है, मनुष्य और देवभी सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं। एक बात और जाननाकि सम्यक्त्व पानेके लिए अधः करण, अपूर्व करण, अनिवृत्तिकरण परिणाम होता है और यह परिणाम वह जीव प्राप्त करता है जिसके क्षयोपशमलब्धि हो, देशनालब्धिहो, विशुद्धिलब्धिहो और प्रायोग्यलब्धि प्राप्तकी हो। तो उपदेश मिला है जिसको, सम्यक्त्व वही पाता है मगर किसीको पूर्वभवमें उपदेश मिला काम देता, किसीको उसही भवमें मिला उपदेश काम देता। अब आप जानेंकि उपदेश सुनना कितना लाभकारी है। देशनालब्धि पाए बिना सम्यग्दर्शन किसीको नहीं होता, चाहे पूर्वभवमें देशनालब्धि मिलीहो चाहे इस भवमें। यथार्थ ज्ञान वाली बात सुनना समझना यह इस जीवके लिए बहुत लाभकारक बात है। यह संस्कार कभी काम देगा। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्यक्त्व पानेके अधिकारी चारों गतियोंके जीव हैं, भव्य हैं और वे संज्ञी हैं, असंज्ञी जीवोंमें उपदेश धारण करनेका सामर्थ्य नहीं होती। वह पुरुष विशुद्ध है जिसको शुभ लेश्यायें हो, विशुद्ध परिणाम बढ़ रहाहो वह जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है। टीकाकारने बताया हैकि निद्रायें ५ होती हैं। दो निद्रातो हल्की होती हैं, निद्रा और प्रचला और तीन निद्रायें गहरी होती हैं, निद्रा निद्रा, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धि। ऐसी तीन महानिद्रावोंमें रहने वाला जीव सम्यक्त्व नहीं प्राप्त कर सकता। संस्कृत टीकाकारके इस स्पष्टीकरणसे एक समस्या और सुलझ गई है। यहां बताया गया है कि मुनिकी निद्रा अन्तर्मुहूर्त होती है छठे गुणस्थानमें, ७वें में निद्राही नहीं है। तो लोग जब देखते हैंकि ऐसा कौन मुनि है जोदो चार सेकेण्ड नींद लेवे और फिर जग जाय? पर जिस निद्राको बताया गया है वह तीव्र निद्रा हैजो सम्यक्त्वमें बाधक है, वह उच्च संयममें बाधक है ऐसा यह जीव जागृत दशामें सम्यक्त्वको प्राप्त करता है।

भव्य, संज्ञी सुविशुद्ध जागृत जीवोंमेंभी पर्याप्त निकटसंसारीके सम्यक्त्वलाभकी पात्रता—श्रावककी ११ प्रतिमावोंमें मूल आधारभूत प्रतिमा दर्शन प्रतिमा है, दर्शन प्रतिमामें जीव निरतिचार सम्यग्दर्शन और निरतिचार मूल गुणका धारी होता है, जिसमें यह सम्यग्दर्शनका प्रकरण चल रहा है। सम्यक्त्वसे उत्पन्न होने वाला जीव चारों गतिकाहो सकता है। भव्यहो, संज्ञीहो, परिणाम विशुद्धि बढ़ रहीहो और महानिद्रावोंमें नहो और वह जीवपर्याप्त होना चाहिए। कोई जीव अपना भव छोड़कर दूसरा भव प्राप्त करता हैतो चूँकि पहले शरीर छूट चुकासो अब रास्ते में विग्रहगतिमें यह जीव अपर्याप्त हैही, पर जिस जगह नया देह धारण करेगा उस जगह पहुंचनेपर भी चूँकि नये आहार वर्गणावोंको शरीर रूप बनानेमें है। तो जब तक वह नया आहार वर्गणाका पिण्ड को शरीर रूप बननेकी शक्ति नहीं पाता तब तक वह अपर्याप्त कहलाता है। अपर्याप्त अवस्थामें सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति नहीं होती। पर्याप्त हुए बाद देव और नारकियोंकोतो अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यक्त्वहो सकता है। तिर्यञ्चोंको किसीको तीन दिनमें किसीको और अधिक दिनमें सम्यग्दर्शनहो सकता है, किन्तु मनुष्योंको ८ वर्षमें सम्यक्त्वहो सकता है, नया सम्यक्त्व होनाहो उसकी बात कहीजा रही है। पञ्चेन्द्रिय संज्ञी तिर्यञ्चोंमें जिनकी आयु बहुत छोटी होती हैं औरवे तीन दिनमें ही शरीरसे यथासंभव पुष्टहो जाते हैं इस कारण उन्हें जल्दी सम्यक्त्वहो सकता है। पर मनुष्योंके सम्यक्त्व ८ वर्षकी आयु होने पर उत्पन्नहो पाता है। तोये ८ वर्ष गर्भसे निकलनेके बाद नहीं किन्तु जबसे वह गर्भमें आया तबसेही आयुवाला माना जाता है। जन्म उस समय हुआ जब जीव गर्भमें आया, मनुष्यतो तबहीसे कहलाया। तो पर्याप्त होना चाहिए तब वहां सम्यक्त्व धारण करनेकी पात्रता होती है। यह जीव संसार के निकट है। जिसके सम्यक्त्व होता है वह कुछही समय बाद निर्वाणको प्राप्त करता हैतो यही संसारकी निकटता कहलाती है। तो जिस जीवका संसार निकट है वह जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है।

सम्यक्त्व होतेही अधिकसे अधिक संख्या अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकालही शेष—सिद्धान्तमें बताया गया है कि जब संसार अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन रह जाता है तब सम्यक्त्व होता है। पुद्गल परिवर्तनकालभी बहुत बड़ा होता है, उसमेंभी अनगिनते वर्षोंका (सागरोंका) काल रहता है। किन्तु एक सीमा बन गई, अब यह जीव मोक्ष जाएगा।

Version 1

मोक्ष पानेके निश्चयका आदर—एक कथानक है कि एक श्रावक भगवानके समवशरणमें वंदनाके लिएजा रहा था, रास्तेमें एक मुनि महाराज मिलेतो मुनिकी वंदनाकी। तब मुनि महाराज बोलेकि तुम समवशरणमें जा रहेहोतो वहां गणधर देवसे इतना पूछ आना हमारे विषयमेंकि कितने भव शेष रह गए। तो वह श्रावक वंदनाके लिए गया और गणधर देवसे पूछाकि अमुक मुनिराजके कितने भव संसारमें शेष रह गए? तो उत्तरमिलाकि वह मुनि जिस वृक्षके नीचे बैठा मिलेगा उस वृक्षमें जितने पत्ते हैं, उनकी जितनी गिनती है उतने भव संसारमें उसके बाकी रहे। तो यह बात सुनकर श्रावक बड़ा खुश हुआ और पहुंचा मुनि महाराजको खुश खबरी सुनानेके लिए। पहलेतो वह मुनिराज एक छेवलेके पेड़के नीचे बैठे हुए थे, उसमें कुल १०—१२ ही पत्ते थे, परन्तु जिस समय वह श्रावक मुनिराजके पास पहुंचा उस समय वह इमलीके विशाल पेड़के नीचे बैठे हुए थे। इस दृश्यको देखकर वह श्रावक माथा धुनने लगा। भला बताओ एक विशाल इमलीके पेड़में कितने पत्ते होंगे, क्या कोई अंदाज लगा सकता? उस श्रावकको माथा धुनते देखकर मुनिराजने पूछा—कहो, माथा क्यों धुनते? क्या बताया गणधर देवने मेरे भवोंके बारेमें? तो वह श्रावक बोला—महाराज गणधर देवनेतो यह बतायाथाकि मुनिराज जिस पेड़के नीचे बैठे मिलें उतने भव शेष हैं, तो इमलीके पेड़के नीचे आपको बैठा हुआ देखकर मुझे दुःख हुआकि आपके अभी अनगिनते भव शेष हैं। तो मुनिराज बोले—अरे खेद क्यों मानते? यहतो खुशीकी बात है। इस अनन्तकालके सामने कमसे कम कुछ कालकी सीमातो बन गई। अनन्तकालमेंतो भवोंका अन्तही नहीं आता, पर अब मेरे भवोंका अन्ततोआ गया। तो कोई जीवसम्यक्त्व पाकर थोड़ेही मिनटोंमें मोक्ष जा सकता, पर ज्यादह संसारमें रुलना पड़ेगातो अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन तक रहेगा। वह संसार तट उसका निकट हो गया, ऐसा ज्ञानी जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है।

सही ज्ञान व सम्यग्ज्ञान—बताया यह गया हैकि सम्यग्दर्शनके होने पर सम्यग्ज्ञान होता है, किन्तु यह सोचेंकि सम्यग्दर्शन होनेसे पहलेजो ज्ञान होता है, जिस ज्ञान वालेको सम्यग्दर्शन होगा, क्या वह ज्ञान विपरीत है? क्या वह देहको जीव मान रहा है? नहीं, विपरीततो नहीं है। ज्ञान उसका सही है, ७ तत्त्वोंका यथार्थ बोध है। देव, शास्त्र, गुरुका सही स्वरूप जानता है। आत्माके स्वरूपकोभी जानता है। ज्ञानतो सब सही चल रहा है जिस जीवको सम्यग्दर्शन होगा, पर वह ज्ञान सही होकरभी सम्यग्ज्ञान क्यों नही कहा गया? उसका कारण यह हैकि उस ज्ञानसेजो जानना है, उसकी अनुभूति नहीं हुई है, अनुभूतिरहित ज्ञान है वह, जोकि सम्यक्त्वसे पहले है, मगर है सही। अनुभवहो जानेपर तत्काल सम्यक्त्व हुआ। तत्कालही वह सम्यज्ञान कहलाने लगा, तो ज्ञानी जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है।

सम्यक्त्वोत्पत्तिका कारण—अब तक सम्यक्त्व क्यों नहीं हुआ? उसका कारण उपादानकी ओरसे तो यह हैकि यह जीव विषय कषायोंमें लगा रहा, देहको अपना मानता रहा, इस कारण उसने सम्यक्त्व नहीं पाया, पर ऐसाभी करता क्यों रहा? यहभीतो प्रश्न कियाजा सकता है। तो निमित्त दृष्टिका उत्तर दिए बिना समाधान न बनेगा। तो निमित्तकी ओरसे यह उत्तर हैकि सम्यक्त्वका घात करने वाली ७ प्रकृतियां हैं उन ७ प्रकृतियोंका उदय रहा। उपशम, क्षय, क्षयोपशम नहो सका इस कारण सम्यक्त्व न हुआ। किसीभी पदार्थमें कोई नए ढंगकी बात होती हैतो उसकी कोई परद्रव्यकी दशा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निमित्त कारण हुआ करती है। सम्यक्त्व घातक प्रकृतियां हैं मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ। इन ७ प्रकृतियोंके उपशमसे उपशम सम्यक्त्व होता है और ७ प्रकृतियोंके क्षयोपशमसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है व उनके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है। क्षायिकसम्यक्त्वतो केवली भगवानके पादमूलमें मनुष्योंकोही हो सकता है। कोई यदि श्रुतकेवली हैतो उसको अपने आप क्षायिक सम्यक्त्वहो सकता है। उसे यह अनिवारित नहीं हैकि केवलीका पादमूल मिलने परहीहो।

सम्यक्त्व होते समयकी निमित्तरूप कर्मदशाका निरूपण—उक्त तीन सम्यक्त्वमें सबसे पहले उपशम सम्यक्त्व हुआ करता है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके ७ प्रकृतियोंकी सत्ता नहीं है, क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यक्प्रकृतिका बंध नहीं हुआ करता, किन्तु उपशम सम्यक्त्व होने पर तुरन्तहीजो दबा मिथ्यात्व है उसके तीन टुकड़ेहो जाते हैं—कुछ मिथ्यात्व रहता है, कुछ वर्गणायें सम्यग्मिथ्यात्वहो जाती हैं, कुछ कर्म वर्गणायें सम्यक्प्रकृतिहो जाती हैं, तब ७ की सत्ता रहती है। सो अनादि मिथ्यादृष्टिके ५ प्रकृतियोंके उपशमसे उपशम सम्यक्त्व होता है। अनुद्वेलितसादिमिथ्या दृष्टिके इन ७ प्रकृतियोंके उपशमसे उपशम सम्यक्त्व होता है। ऐसा उपशम सम्यक्त्व कब होता है जब जीवके कर्मबन्धन अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिका होता है, वहां उपशम सम्यक्त्व होता है। यह स्थिति बहुत कम है मिथ्यादृष्टि जीवमें, नहींतो ७० कोड़ाकोड़ी सागर तकके कर्म बंधते हैं एक समयके खोटे भावमें। ७० कोड़ाकोड़ी न रहा, एक कोड़ाकोड़ीभी न रहा, उससेभी बहुत कम हैं। इतनी स्थितिके कर्म जब बंधने लगते हैं जब जीवको उपशम सम्यक्त्व होता है। इतनी छोटी स्थितिके कर्म बंधनेका क्या कारण है! प्रायोग्यलब्धि। सम्यक्त्व पानेके लिए ५ लब्धियां हुआ करती हैं। क्षायोपशमिक लब्धि याने कर्मका हल्कापनआ जाना, विशुद्धिलब्धि परिणाम में निर्मलता जगना, देशनालब्धिमें आचार्य आदिक उपदेशकोंका उपदेश सुननेको मिलना और उस उपदेशका अर्थ समझ पाना और हृदयमें अवधारण होना, प्रायोग्यलब्धि एक ऐसा विशुद्ध परिणाम हैकि जिसमें कर्मकी स्थितिका बंध हल्का होने लगता है और यहां ३४ बार ऐसा अवसर आता है जिसमें इतना हल्काहुआ तो नरकायु न बंधेगी, और हल्काहुआतो अन्य प्रकृतियां न बंधेगी। इस प्रकार ३४ बारमें ऐसी प्रकृतियोंकाभी बंध रुक जाता हैकि उनमेंसे कई प्रकृतियां ऐसी हैं कि जिनका छठे गुणस्थानमें तो बंध होने लगेगा पर सम्यग्दर्शन उत्पन्न करने वाले मिथ्यादृष्टिके बंध न हो सकेगा, इसको कहते हैं बंधापसरण, इसे सम्वर नहीं कहते। सम्वरतो सम्यक्त्व पाये बिना नहो पाएगा, पर उस मिथ्यादृष्टि जीवकेभी इतने निर्मल परिणाम प्रायोग्यलब्धिमें चलेकि उस कालमें अनेक प्रकृतियां बंधसे रुक गईं, और भलेही सम्यक्त्व होतेही बंधने लगेंगी। उसके भीतरकी विशुद्धि निरखिये, किस दर्जेकी विशुद्धि है। बातभी ऐसी हैकि सम्यग्दर्शन होते समय सम्यक्त्व होने पर जितना कर्मभार हट जाता है उसके बादजो कर्मभार जीवके साथ रहा है वह समझियेकि एक लाख रुपयेमें एक रुपये बराबर जैसे किसी पर एक लाख रुपयेका कर्जाहो और ९९ हजार ९९९का कर्जा चुका दिया, बस एक रुपयेका कर्जदार रहा, तो उस भारके आगे यह क्या है, ऐसेही सम्यग्दर्शन होने पर जितने कर्म दूर हुए हैं, जो बोझ हटा है उस बोझके सामने रहा सहा बोझ न कुछ चीज है फिरभी

Version 1

जब तक शेष कर्म हैं तब तक निरावरणपनेका लाभतो रुक जाता है। सम्यक्त्व होने पर यह जीव इतना विशुद्धहो जाता है।

पञ्चम गुणस्थानमें प्रविष्ट जीवकी स्थिति—कोई जीव मनुष्यया तिर्यञ्च उपशम सम्यग्दृष्टिहो और उसने प्रथम प्रतिमाका व्रतभी धारण कियाहोतो वह पञ्चम गुणस्थानमें आया हुआ कहलाता है। तिर्यञ्चोंके भी व्रततो होता है, पर जैसे मनुष्योंको कहा गया हैकि सामायिक करें, प्रोषधोपवास करें और आगेकी प्रतिमा पालें, इस तरहकातो नहीं होता, पर समझलीजिएकि वह दर्शन प्रतिमा जैसाही व्रत है। कितनेही तिर्यञ्च मांस खाना छोड़ देते हैं और ऐसी जगहका पानी पीते हैं जहां सूर्यकी गर्मी रहतीहो, ऐसे तालाबके किनारे पर ऊपरसे पानी गिर रहाहो, ऐसी जगहमें पानी पीते हैं, शुष्कजो फल मिलें उन्हें खाते हैं अथवा सूखी घास खाते हैं, मांसका त्याग कर देते हैं सोपंचेन्द्रिय तिर्यञ्चभी श्रावक होते हैं, याने पशु पक्षीभी श्रावक होते हैंतो जितना काम पशुपक्षियोंका श्रावक अवस्थामें होता है उतना कामतो इस गृहस्थको करनाही चाहिए। कितनेही जीव तिर्यञ्चया मनुष्योंमें क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि होते हुए पहली प्रतिमाका व्रत पालते हैं। क्षयोपशम सम्यक्त्वका अर्थ हैकिं उन ७ प्रकृतियोंमेंसे अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व इन ६ प्रकृतियोंका उदयाभावी क्षय होता है, अर्थात् ये ६ प्रकृतियाँ उदयमेंतो आनेको हैं मगर एक समय पहलेसेही वे प्रकृतियाँ अन्य रूप बदल जाती हैं और उदयमें आती हैं उदयके ठीक समयमें उन ६का अभाव है। औरवे ६ प्रकृतियाँ सत्तामेंतो पड़ी हैंही। कहीं उनकी उदीरणाहो जाएतो सम्यक्त्व न रह सकेगा। तोजो सत्तामें ६ प्रकृतियाँ हैं वे उदीरणामें न आ सकें याने समयसे पहले उदयमें नआ सकें इसका नाम है उपशमसो इनका उपशमहो और सम्यक्प्रकृतिका साथमें उदयहोतो वहां क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है। मगर वह सम्यग्दृष्टि श्रेणी पर नहीं चढ़ सकता। क्षयोपशम सम्यक्त्व ७वें गुण स्थानतकही होता है, पर उत्कृष्टतया रहता है यह ६६ सागर पर्यन्त। और किसी मनुष्यगतिके जीवमें सम्यक्त्व है और अष्टमूल गुणका निरतिचार पालन है वहभी पञ्चम गुणस्थानमें आया समझिए।

क्षायिक सम्यक्त्वकी अविनश्वरता तथा सम्यग्दृष्टिकी अन्तः उमंग—इस जीवने उपशम सम्यक्त्व और क्षायोपशमिक सम्यक्त्वको अनगिनते बारभी प्राप्त किया, फिरभी मिट जाता। चाहे अन्य सम्यक्त्व होकर मिटेया मिथ्यात्व होकर मिटे, किन्तु क्षायिक सम्यक्त्व जिसकोहो जाय वह नहीं मिटता और नियमसे उसका यथा संभव मोक्षहो जाता है। उसे अधिकसे अधिक समय रहना पड़ता हैतो तीन चार भव तकही। क्षायिक सम्यक्त्व पाये बिना किसीका निर्वाण नहीं होता। औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्वतो भूमिका है। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टिही क्षायिक सम्यक्त्व करता है। तो जिसको सम्यक्त्वहो गया उसकी क्या भावना बन जाती है, कैसी उसकी दृष्टि होती है वह लौकिकजनोंसे विलक्षण है। वस्तुको अनेकांतरूपमें निरखता है। जोभी दिखते हैं वे सदा रहेंगे और उनकी क्षण-क्षणमें नयी-नयी अवस्थायें बनेंगी। यह सभी वस्तुओंका स्वरूप है। ऐसा जाननेसे अपने बारेमेंभी यह उमंग बनतीकि यह मैं आत्मा सदा रहूंगा और चूँकि मेरी समय समय पर नई-नई परिणतियां हुआ करती हैं। तो मैं इस संसार परिणतिको मेट सकता हूं और शुद्ध परिणतिकोपा सकता हूं। यदि मानलेंकि यह

http://www.jainkosh.org

जीवएकसा ही रहता, नई-नई पर्यायें नहीं रहतीं तो इस समयतो यह जीव भोंदू बना बैठा है। पर भोंदू बनकर सदा रहना यह वस्तुका स्वरूप नहीं है। जीव सदा रहेगा, पर नई-नई अवस्थायें पाता है, तो मैं संसार अवस्थाको त्यागकर मुक्त अवस्थाको प्राप्त कर सकता हूं ऐसी उसकी उमंग रहती है।

सम्यग्दृष्टिके सप्ततत्त्वविषयक श्रद्धानका संक्षिप्त दिग्दर्शन—सम्यग्दृष्टि जीव, जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष इन ७ तत्त्वोंका यथावत् श्रद्धान रखता है। मैं जीव हूं, जीवके साथ अनादिसे कर्मधारा चली आयी है, पौद्गलिक कर्मवे अजीव हैं उन पौद्गलिक कर्मोंका उदयहोने पर उनमें अनुभाग खिलता, पर उसका प्रतिफलन मुझमें होता है, यह भावाश्रव है और ऐसा होनेसे नये कर्म आते हैं, यह द्रव्याश्रव है। जब यह मैं अपने सहज स्वभावकी सम्हाल कर लेता हूंतो यह है भावसम्वर और उस समय नवीन कर्मका आश्रव नहीं होता यथायोग्य वह है द्रव्यसम्बर। जब यह जीव अपने आपके स्वरूपकी सम्हालमें स्थिर रहता हैतो अपने आप विकार विभावये झड़ने लगते हैं। संस्कारभी मिटने लगते, यह है भावनिर्जरा। और उस समय बंधे हुए कर्म झड़ते हैं, यह है द्रव्यनिर्जरा। भावनिर्जरा और द्रव्यनिर्जरा मानते-मानते जिस समय समस्त कर्मोंका क्षयहो चुकता है और यह आत्मा समस्त कर्मोंसे छूट जाता हैतो आत्माका छूट जाना यह है मोक्ष, कर्मोंका अलगहो जाना यह है द्रव्यमोक्ष। इस प्रकार सामान्य तौरसे इसहीको और विशेष रूपसे यह जीव श्रद्धान करता है जिसके अनुसार आचरणभी बनता है और उस आचरणके प्रसादसे यह नवीन कर्मोंको आने नहीं देता, पूर्वबद्ध कर्म झड़ने लगते, तो कोई काल आता हैकि यह संसारकी सर्व विपदावोंसे सदाके लिए मुक्तहो जाता है।

सम्यग्दृष्टिके पुत्रकलत्रादि सर्वअर्थोंमें गर्वका अभाव—जिस भव्य आत्माको अपने आपके सही सहजस्वरूपका अनुभव हुआ है, जिसका यह पूर्ण निर्णयहो गया हैकि मैं सहज ज्ञानस्वभावमात्र हूं, मैं अमूर्त हूं, रूप रस गंध स्पर्शसे रहित हूं और सहज प्रतिभास मात्र हूं, ऐसा अनुभव कर चुकने वाला जीव पुत्र स्त्री आदिक समस्त पदार्थोंमें गर्व नहीं करता। जिसको देह दृष्टि है और देहके नातेही सारे नाते मान रखे हैं, यह मेरा पुत्र है क्योंकि यह मुझसेही तो पैदा हुआ, मेरेही कुलका है, मेरेही घरका है। ऐसा कुछभी विश्वास रखकरजो मानता हैकि यह मेरा है उसको गर्व होता है। मैं पुत्रवान हूं, ऐसे कुटुम्ब वाला हूं, ऐसा वह गर्व करता है लेकिन सम्यग्दृष्टि जीव अपने कुटुम्बीजनोंको निरखकर गर्व नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि ये सब जीव जुदे जुदे हैं, अपने-अपने कर्मका फल भोगते हैं, इससे मेरा क्या सम्बंध है? ज्ञानी जीव यदि अकेलाहो जाय, मतलब पुत्रादिक नहों अथवा स्त्री पुत्रादिक न हों, केवल अकेला रह जायतो वह उसमें एक बड़ी प्रसन्नताका अनुभव करता है, क्योंकि उसे अपना शरण परमात्मतत्त्व दृष्टिमें आया है। यह हूं सर्वस्व, मैं यह हूं पूर्ण ज्ञानानन्दमय। पर से जो लगाव रहता था, मोह रहता था वहतो निरन्तर पापका ही बंध चल रहा था और उसमें अनेक उलझनें रहा करती थीं। अब मै स्वतंत्र हूं। एक निज सहज परमात्मतत्वकी उपासनामें रहूंगा, उसे बाह्य सम्बन्धका गर्व नहींहो सकता।

सम्यग्दृष्टिके बाह्य अर्थप्रसंगोंसे विविक्तताका अनुभव—यह ज्ञानी जीवतो अपनेको तृणमात्र जानता है अर्थात् मैं कुछ नहीं हूं, बाहरके नातेसे समझ रहा ऐसा। अन्दरके नात्ते सेतो जानता है कि मैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनन्त ज्ञानानन्दका पुञ्ज हूं, पर बाह्य नातेकी दृष्टिसे यह अनुभव करता कि मैं कुछ नहीं हूं, तृणमात्र हूं। साधारण लोगोंको अपने कुलपर घमंडहो जाता, ज्ञानपर, धनपर घमंडहो जाया करता जिससे अपनेको कुछ मानते हैं कि मैं खास हूं, बड़ा हूं, पर ज्ञानी जीव इन बाहरी संग प्रसंगोंके कारण अपनेको बड़ा अनुभव नहीं करता, वहतो अपनेको तुच्छ तृणमात्र मानता है। ज्ञानीपुरुष अपने संतोष भावमें ठहरता है। यह पहली प्रतिमाका लक्षण चल रहा है जिसमें सर्वप्रथम यह बतायाकि सम्यग्दर्शनसे सम्पन्नहो और फिर निरतिचार मूल गुणहोंतो वह पहली प्रतिमाका धारी होता है। वह हर बातकी समझ रखताकि मेरी भलाई किसमें है। ज्ञानी पुरुषको किसी भी बात पर घंमड नहीं होता बाह्य संग प्रसंगोंके कारण। यह सब मायाजाल है। ज्ञानावरणका क्षयोपशम मिले, अन्तरायका क्षयोपशमहोतो कुछ संग प्रसंगकी बात मिल गई, अब इसमें मेरा हित क्या है? मेरे आत्माका कोई दूसरा जिम्मेदार नहीं, ठेकेदार नहीं, यहां कोई भ्लेही अपनेको स्त्री पुत्रादिक परिजनोंका या दुनियाका ठेकेदार माने, यहतो उसके कल्पनाकी बात है। पर पर है कोई किसीका जिम्मेदार नहीं। जिसपर जैसा उदय आता है उसे वही केवल भोगता है। और अपने आत्मस्वरूपको सम्हालेतो वही कर्मका क्षय करके निर्वाण पाता है। यहां दूसरेका कुछ नहीं है मुझमें। मैं भी किसी दूसरेका कुछ नहीं हूं। सर्व जीवोंका अपनी-अपनी योग्यतानुसार योग्य निमित्त पाकर काम चलता रहता है, यह है पहिचान, सम्यक्त्व है अथवा नहीं, इसकी परख करनेकी।

सम्यग्दृष्टिके मोहविलासके प्रति हेयत्वबुद्धि—यह ज्ञानी पुरुष अपनी करतूतके बारेमें यह निर्णय रखता हैकि यह सब मोहका विलास है। इन्द्रियके विषयोंमेंजो प्रवृत्ति होती रहती है, सुहावना स्पर्श छूना, अच्छा लगना, सुहावना स्वाद लेना, सुगंधका पंसद होना या दुर्गन्धसे बचना, रूपका अवलोकन करना, कर्णप्रिय राग रागनीके शब्द सुनना आदिक ऐसीजो कुछ वृत्तियां होती हैं वह सब मोहका प्रसार है, सार कुछ नहीं है। जो विषयोंमें आसक्त है उसकीतो संसारमें जन्ममरणकी परम्परा बनेगी। ज्ञानी जीव अपनी चेष्टावोंके बारेमें इस तरह देखता है जो कुछ मैने किया वह सब अज्ञानकी चेष्टा हुई। यह जानता है ज्ञानी। अपने बारेमें सोचो प्रातः काल जल्दी उठे, नहाये धोये, कुछ कुटुम्बीजनोंसे बात हुई, फिर मंदिर गए, पूजाकी, दर्शन किया, स्वाध्याय भी कर रहे, फिर लोगोंसे मिलनेका भी काम कर रहे, अच्छे बुरे सभी काम करते, वह सब मोहकी चेष्टा है, अज्ञानकी चेष्टा है क्योंकि ज्ञानकी चेष्टातो केवल जाननहार रहना है। अपनी इन चेष्टावोंमें क्या आप मैं जाननहार ही रहे? क्या मैं जाननहार ही रहता हूं? उसमें कुछ इष्ट अनिष्टकी बुद्धि नहीं जगती क्या? जगती है,तो वह अज्ञानचेष्टा है। अज्ञान चेष्टा दो प्रकारकी होती है—(१) मिथ्यात्वमें होने वाली अज्ञान चेष्टा और (२) सम्यक्त्व होते हुए भी रागवश होने वाली चेष्टा। अज्ञानचेष्टा है। पहली ज्ञान की विपरीतता के कारण दूसरी ज्ञान की कमी के कारण अज्ञान चेष्टा है।

अपनी सर्वविकल्प चेष्टाओंको अज्ञानचेष्टा समझने वाले ज्ञानीका अन्तः प्रसाद—अपनी सारी चेष्टावोंमें एक यही निर्णय रखिए कि यह अज्ञानचेष्टा है फिर देखिये कितना सुन्दर समय व्यतीत होगा। किसीसे विवाद विरोध कभीहो ही नहीं सकता। जो अपनी इन सारी चेष्टावोंको अज्ञान चेष्टा मानता है—मेरा दुनियांमें कोई विरोधी नहीं, भले ही दूसरा देखतो नहीं हैकि कोई इसे विरोधी माने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

या नहीं माने पर इसको कोई दूसरा अपना विरोधी नहीं जंचता। अपनी गल्ती स्वीकार कर रहा ज्ञानी। धर्म कार्योंमें भीजो मन लग रहा है बाह्य साधनोंमें उन तकको भीजो मूल समझ रहा वह क्या अपनी गलती करके अपनेको बुद्धिमान समझेगा? आप भाषण सुन रहे, मैं कुछ बोल रहा। बताओ यह ज्ञानचेष्टा है कि अज्ञानचेष्टा है? अज्ञानचेष्टा है। बड़े अच्छे भावोंसे बैठकर आप सुन रहे, मैं भी एक धर्मबुद्धिसे बोल रहा हूं मगर इस प्रसंगमें भीजो मन चल रहा है, सोच रहे हैं, वचन बोल रहे हैं, शरीरकी चेष्टायेंहो रही हैं ये क्या ज्ञान चेष्टायें हैं? ये भी अज्ञान चेष्टायें हैं। कितना गहरा है यह चैतन्यस्वरूप कि मुनि भीहो गए, योग्य कार्य भी कर रहे और सही मुनि है, पर वह भी अपना विहार करनेको आहार करनेको, बोलनेको, आवश्यक काम करनेको, इन तकको भी समझता हैकि यह अज्ञानचेष्टा है। और इसमें विशेष क्या समझाना, बस यह मात्र जाननहार रहे, रागद्वेषके कोई कण न आये इसे कहते हैं ज्ञानचेष्टा। अब अंदाज करना चाहिए कि हम आपकी रात्रिदिनकी सारी चेष्टायें अज्ञान चेष्टायें हैं। और फिर उन चेष्टावों पर गर्व आयेतो वह मिथ्यात्वका उदय समझिये। अज्ञानचेष्टा होनेसे कहीं सम्यक्त्व नहीं बिगड़ा, मगर अज्ञान चेष्टा होकर भी उस पर घमंड रहेतो उसका सम्यक्त्व बिगड़ गया समझिये। भैया, कितना अपने को सावधान रखना है? इस भीतरी प्रकाशको निरखकर निर्णय रखिये। वह इस सब मोह विलासको हेय मानता है ! क्या ज्ञानी ऐसा सोचता है? लोग सुनने आते हैं, मैं बोलता हूं, लोग बड़े भावसे सुनते हैं, बड़ा अनुराग रखते हैं, तो मैं ऐसा बोलता ही रहूं सदा, क्या ऐसा ज्ञानी पुरुष अपने चित्तमें धारण करेगा? या मैंजो धर्मप्रसंग करता हूं, समारोह किया, जलसा किया, यात्राकी तो क्या वह यह सोचता हैकि ऐसा ही मैं करता रहूं इस भवमें?

ज्ञानीकी समस्त शुभ अशुभ भावोंसे उपेक्षा—भैया, ज्ञानीकीतो प्रभु पूजामें भी यही आवाज है कि "तव पादौमम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनं। "तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः।" हे प्रभु तुम्हारे चरण कमल मेरे हृदयमें रहें, मेरा हृदय आपके चरणों में रहे जब तक कि मोक्षकी प्राप्ति नहो। कोई अगर यहां वहां ही आदमी सुनता होगातो कहता होगा कि देखो यह प्रभुके आगे भी खुदगर्जी चाहने जैसी बात कर रहा। जब तक मुझे मोक्ष न मिले तब तक मेरी भक्ति आपमें रहे, यहतो एक अपने स्वार्थसाधनाकी बात कहलायी। भला बतलाओ, इस प्रकारकी बात सुनकर उसे कोई अच्छी निगाहसे देखेगा क्या? यहां यह ज्ञानी भक्त प्रभुको कह रहा है कि आपके चरण मेरे हृदयमें तब तक रहें जब तक कि मुझे मोक्ष प्राप्त न हो। यदि ऐसा कहे कोई प्रभुको कि हे प्रभो ! मैं भव-भवमें संदैव इस संसारमें आपकी ही मूर्तिका अभिषेक करूं और आपके ही आगे अष्ट द्रव्योंसे मैं पूजा करता रहूं। बताओ यह सच्ची भक्ति है क्या प्रभुकी? यहतो मिथ्यात्वकी वासना है। भव-भवमें चाहता है यह राग, प्रभुकी पूजा, दर्शन यद्यपि यह मन्द कषाय है, पर कषायरहित दशा नहीं है और लौकिककार्य, लड़ाई-झगड़े, बोलचाल या घरमें प्रेम रखना, अनुराग, यह अशुभ कषाय है, तीव्र कषाय है। कषायतो सभी करते हैं, मगर प्रभु भक्ति, प्रभु पूजा मंद कषाय है। करेगा ज्ञानी प्रभुकी भक्ति, मगर यह भाव न रहेगा कि मैं सदैव प्रभुका ऐसा भक्त रहूं, ऐसा यदि शुभ भावका भी लगाव है तो वह अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, उसको कुछ पता नहीं है। इसलिए ऐसी आस्था रख रहा है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानमात्र संचेतनके अतिरिक्त अन्य चेष्टाओंकी हेयता—अब आप समझिये अज्ञान चेष्टावोंका कितना बड़ा फैलाव है? जैसे मानलो सारे काम एक करोड़ हैं। उस एक करोड़में एक ज्ञाताद्रष्टा रहनेका भी काम धरलो तो उनमें से एक कामतो है ज्ञानचेष्टा और ९९ हजार ९९९ चेष्टायें अज्ञान चेष्टायें हैं। उस आन्तरिक शुद्ध तत्त्व पर दृष्टि लाता है ज्ञानी और इसी कारण सब संग प्रसंगोंको हेय मानता है। कोई रईस बीमारहो जायतो उसके बड़े शौक बढ़ा दिए जाते हैं। बड़ा अच्छा कोमल गद्दा होना चाहिए। सुगंधित पदार्थ अधिक होना चाहिए, दिनमें दो दो तीन-तीन बार डॉक्टर आना चाहिए। मित्रजनोंका आने-जानेका तांता लगा रहता है, मित्रजन आ आकर बड़ी अच्छी वार्ता करते रहते हैं, यों बाहरी रूपसे अगर देखा जायतो उस बीमार रईसकी बड़ी सेवायेंहो रही हैं पर उस रईस रोगीके दिलसे पूछो कि क्या आपको ऐसी सेवायें हमेशा मिलते रहना पंसद है। तो शायद वह यही कह उठेगा कि मुझे ऐसी सेवायें न चाहिए। मैंतो यह चाहता हूं कि मैं प्रतिदिन मीलदो मील घूम आऊं। देखिये कितने बड़े आरामके साधन जुटाये जाते हैं उस बीमार दशामें रईस रोगीके लिए खानेके लिए मना करतातो लोग उसे बहुत बहुत मनायेंगे। अब आप देखलो कितना बड़ा आराम है बीमार बनने में? अब यदि हम आपसे पूछें कि बताओ आप लोग ऐसा आराम चाहते हैं क्या? तो शायद आप यही कह उठेंगे कि मुझे न चाहिए ऐसा आराम। तो ऐसे ही दशा उस बीमार रईसकी समझिये। वह उन सर्व आरामके साधनोंको हेय मानता है। हेय मानता है, पर वह बड़े प्रेमसे दवाई क्यों पीता है? वहतो हेय चीज है झुंझलानेका कारण है। उसे यह आस्था बनी हैकि मेरी दवा छूटेगी इस दवाके खानेसे। वह दवासे छुटकारा पानेके लिए दवापी रहा है, दवा पीते रहनेके लिए दवा नहीं पी रहा है। इसका लक्षण देखिये—ज्ञानी सम्यग्दृष्टिको भी विषयोंके प्रसंग आते हैं, वह खाना खायगातो स्वाद न आयगा क्या? आयगातो फिर इसमें राग हुआ ना? रागतो हुआ फिर भी राग नहीं है। वह इन विषयोंके प्रसंगसे छूटनेके लिए आ पड़े हुए विषयोंको भोग रहा है।

किसी परिस्थितिमें विषय परिहारके प्रयोजनसे विषयप्रसंग—कोई साधु यदि यह हठ करले कि यह भोजन, आहार, यह भीतो विषयसेवन है क्योंकि विषय सेवनतो पांचों ही इन्द्रियोंके व्यापारको कहते हैं। भोजन करना भी विषय सेवन है, फिर मैं क्यों भोजन करूं? यदि ऐसी हठ करके वह आहार जलका त्याग करदे तो उसका तो संक्लेशमरणहो जायगा सो वह दुर्गतियोंमें जायगा। सो संयमका साधन बनाये रखनेके लिए वह साधु आहार लेता है। आहार संयमका साधन बन रहा था मुनि अवस्थामें और हाथ पैर भी चल रहे थे, पर वह विवश होकर करना पड़ रहा था। ये खाने-पीने आदिककी चेष्टायें अज्ञान चेष्टायें हैं, तो ऐसा जबरदस्ती कोई विषयोंका त्याग करके संक्लेश से मरेतो क्या ये विषय छूट जायेंगे? अरे अगले भवमें ये फिर मिलेंगे, तो ज्ञानी जीव इन विषयोंसे छुटकारा पानेके लिए ही उन विषयोंके प्रसंगमें रहकर भी ऐसी साधना भीतरमें बना रहा है जो कि उसके भीतरके विषयोंको एकदम खतम कर देगा। ज्ञानीका ऐसा लक्ष्य है कि सर्व संग प्रसंगोंको वह ऐब मानता है।

ज्ञानीको उत्तमगुण ग्रहणरति—दर्शन प्रतिमाधारी श्रावक कैसा हुआ करता है उसका वर्णन यहां चल रहा है। उसके सम्यक्त्व है निर्दोष। इस कारण उसकी ऐसी ही वृत्ति है किजो उत्तम पुरुष हैं उनके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुणके ग्रहण करनेमें अनुराग रहता है। अज्ञानी जीव गुणियोंको देखकर ईर्ष्या करते हैं, घृणा करते हैं, उल्टा-उल्टा देखते हैं, क्योंकि उनका सब उल्टाहो रहा है काम। मिथ्यात्वका उदय हैतो उल्टा ही दिखेगा। जिसको सम्यक्त्व हुआ है वह सर्व जीवोंको निरपराध स्वरूपमें निरखेगा और निर्णय रखेगा कि हमसेजो अपराध बनता है वह हमारे आत्माका अपराध नहीं है। यह कर्मोदयकी झांकी है, माया है, ऐसा सब जीवोंमें अन्तः स्वरूप निरखने वाला पुरुष क्या उत्तम पुरुषोंके गुणोंमें द्वेष रखेगा? अरे उसकेतो उत्तम पुरुषोंके गुणोंके ग्रहणमें अनुराग रहता है। ज्ञानीकी यह पहिचान है। सम्यक्त्व जहां है वहांतो यह है ही पर मामूली रीतिसे थोड़ा यह समझनाहो कि यह पुरुष ज्ञानी है या अज्ञानी। एक ही पहिचान कराया है यहां। यदि गुणवान पुरुषोंका गुणोंका वर्णन करनेका अनुराग है? उनके गुणोंका भक्त है तो समझिये कि वह ज्ञानी है। यदि गुणियोंसे द्वेष रखता है, दोष निरखता हैतो समझिये कि वह अज्ञानी है। गुण और दोष सब पुरुषोंमें मिलते हैं, अन्तर इतना रहता हैकि जिसमें गुण अधिक हैं, दोष कम हैं वह कहलाता है गुणी, और गुण कम हैं, दोष अधिक हैंतो वह कहलाता है अज्ञानी। तो गुणीजनोंके गुणोंमें भक्ति होना यह है सम्यक्त्वकी पहिचान।

ज्ञानीका साधर्मियोंमें अनुराग—ज्ञानी पुरुष साधुसंत पुरुषोंके विनयसे युक्त रहता है, जब साधुवोंके गुणोंमें अनुराग रहातो फिर वह उनकी विनय कैसे न करेगा? उसके मन, वचन, काय विनयके लिएआ ही जायेंगे। तो ज्ञानी इन चिह्नोंसे परखा जाता है कि साधुसंतोंके विनयसे युक्तहो और उनके गुणोंके ग्रहणका प्रेमीहो तो वह है सम्यग्दृष्टि पुरुष। ज्ञानी पुरुषोंको अपने साधर्मीजनोंमें अनुराग रहता है। जैसे घरके कामका एक लक्ष्य बना लिया, घरमें व्यवस्था रखना और आजीविका चलाना और एक दूसरेके दुःखमें शामिल होना एक लक्ष्य बना रखा है अपने घरके मेम्बरोंमेंतो कैसा मिल जुलकर आप काम करते हैं। किसीने कम काम कियातो भी आप संतोष रखते हैं कि काम हीतो कर रहा यह, थोड़ा कर पायातो क्या हुआ? जितना बताया उतना कर पाया, कोई विशेष काम करता है, मगर घरके सब लोग मिल जुलकर एक सूतमें बंधे हुए मानो इस तरहसे घरकी व्यवस्था बनाते हैं। तो यह धर्मभीतो धर्मका जितना क्षेत्र है, कार्य है वहभीतो एक घरकी तरह है। घरमें आप दो-दो, चार-चार, सात-सात आदमी हैं, उनका एक घर है। ऐसे ऐसे कितने ही घर उसमें शामिल हैतो वह हुआ अपनी साधुताका घर। उसमें क्यों नहीं संतोष किया जाता किजो कोई भी पुरुष धर्मके कार्य में जितना सहयोग दे रहा है, जो जिस लायक है वह प्रभुकी वाणीके प्रसारमें, प्रभुके ज्ञानके प्रसारमें वह सहयोगदे ही रहा है। उनमें भी प्रेम रहना चाहिए।

ज्ञानकी उपासनामें धर्मका पालन—देखिये धर्मपालनके सिवाय ज्ञानके और दूसरी चीजका नाम नहीं है। कोई भी चेष्टा आप करें, मंदिरका और यहां वहांका धर्मके नाम पर, तो ज्ञानका लक्ष्य है और ज्ञानकी भक्तिके लिएही किया जा रहा है तो वह धर्ममें सामिल होगा अन्यथा धर्ममें नहीं सामिल होनेका। क्योंकि आत्माका स्वभाव ज्ञान है और स्वभावका विकासही परम पद है। तो ज्ञान और ज्ञानविकास इनसे सम्बंधित बातेतो धर्ममें आती है, और केवल एक शौकमें, शानमें जिसे कहते हैं शौक लग गया किसीका किसीमें, किसीका इस बातमें शौक लग गया, मगर वह धर्म नहीं हुआ। धर्मपालन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होगा जब ज्ञानका सम्बंधहो खुदके ज्ञानमें, अन्यके ज्ञानमें। ज्ञानकी भक्तिमें अगर आपका मन है तो यहां धर्मकी बात चलेगी अन्यथा धर्मकी बात न चलेगी। थोड़ा पुण्यहो गयासो ऐसा पुण्यतो अन्य कार्योंमें भीहो सकता है, इसमें कुछ अधिकहो गया मगर संसारके संकटोंसे छूट जायें उसका प्रोग्राम न हो पाया। यह ज्ञानी जीव जानता है कि ये सब उस ज्ञानके अनुरागी हैं जिस ज्ञानकी भक्ति करनेसे निकट कालमें केवलज्ञान मिलेगा। उसके उपासक हैंतो उसमें अनुराग बनता है। तो साधर्मीजनोंमें अनुराग करना यह सम्यक्त्व होने वाली चेष्टा है ऐसा सम्यग्दर्शनसे युक्त जो भव्य आत्मा निरतिचार अष्ट मूल गुण पालन करता है उसको दार्शनिक श्रावक कहते हैं।

जीवको निज ज्ञान द्वारा देहसे भिन्न निरखनेकी ज्ञानकला—दर्शन प्रतिमाधारी सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न है, इस सम्बंधमें वर्णन चल रहा है। जिस जीवको अपने सहज चैतन्यस्वभावका ज्ञान द्वारा अनुभवहो जाता है उसे कहते हैं सम्यग्दृष्टि। सम्यग्दृष्टिका क्या चिन्तन रहता, निर्णय रहता, यह यहां बतलायाजा रहा है। यह ज्ञानी पुरुष देहसे मिले हुएभी जीवको ज्ञान गुणके द्वारा भिन्न मानता है। जिस पदार्थकाजो परिणमन है वह परिणमन उसी पदार्थमें देखा जायतो ऐसी निरखसे असाधारण स्वरूपका परिचय मिल जाता है और मित्रता भी ज्ञातहो जाती है। शरीरका परिणमन क्या है? रूप, रस, गंध, स्पर्श बदलना, कठोर होना, हल्का भारी होना, ये सब देहके परिणमन हैं, किन्तु क्या ये परिणमन जीवके भी होते? जीवमें काला, पीला, नीला आदिक रंग होते हैं क्या? जिसमें रंग होते हैं वह जाननेका काम कभी नहीं कर सकता। मैं जानता हूं, मैं रंग रहित हूं, मुझमें खट्टा, मीठा ऐसा रस पड़ा हुआ है क्या? यदि रस पड़ा होतातो यह जाननहार न रहता। इसमें सुगन्ध, दुर्गन्ध परिणमन भी नहीं हैं। कोमल कठोर, रुखा, चिकना, ठंडा, गरम आदि ये कोई परिणमन नहीं है। मैं हूं केवल जाननहार। जो पुरुष अपने आपको मना करता है कि मैं कुछ नहीं हूं। जीव कुछ नहीं हैतो वहां यहतो पूछो कि जीव कुछ नहीं है, ऐसा मना कर कौन रहा है? जो मना कर रहा है वह कुछ जानता हुआ मना कर रहा है या न जानता हुआ मना कर रहा है? न जानता हुआ कोई भी पदार्थ मना नहीं कर सकता। निषेधकी कल्पना कर जो मना कर रहाहो वहीतो जीव है। जैसे कोई पुरुष कहने लगे कि मेरे मुखमें जीभ नहीं है मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूं तो आप उसकी बात मान लेंगे क्या? अरे जिसके द्वारा यह कह रहा है कि मेरे मुखमें जीभ नहीं है वहीतो जीभ है, यदि मुखमें जीभ न होतीतो वह ऐसा कैसे कह लेता? ऐसे ही कोई पुरुष अपनेको मना करे कि जीव नहीं है, तो जिसमें "नहीं है" की कल्पना आयी वह हीतो जीव है।

असाधारण निज चैतन्य स्वभावकी बेसुधीसे कष्ट विडम्बना—जीवका परिणमन है जानन। जाननपरिणमन होनेसे जाननेकी शक्ति सुनिश्चित है। जाननेकी जो शक्ति है वही असाधारण गुण कहलाता है, जीवका असाधारण गुण है ज्ञान शक्ति, चैतन्यस्वरूप और शरीरका असाधारण गुण है मूर्तिकता। मूर्तिक कहनेसे रूप, रस, गंध, स्पर्श सबआ जाते हैं। तो इतना भेद है मुझमें और देहमें। ऐसाजो असाधारण स्वरूप पर दृष्टि रखकर भेद समझता है वह पुरुष ज्ञानी है। जितना जीवोंको दुःख है वह अपने असाधारण स्वरूपमें आत्मीयताका अनुभव न कर सकनेसे दुःख है। वैसे दुःख निकलाहो, पर से मुझमें प्रवेश कर गयाहो, ऐसा होता है क्या कहीं? दुःख उसकी जगह है, वह अपने ढंगसे परिणम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा है। उससे मुझमें कुछ नहींआ रहा, फिर दुःखका कारण कोई बाहरी पदार्थ कैसे कहलायगा? दुःख यही है किजो अपने असाधारण स्वरूपका ज्ञान न होनेसे बाह्य पदार्थोंमें यह उपयोग भटकता रहता है, कष्ट इसका है। जिन परमेष्ठियोंकी हम वंदना करते हैं उन्होंने यह हीतो किया था, अपने स्वभावमें अपने आत्मत्वका अनुभव किया था। संकट उनके खतमहो गये। यहां कैसा मोहविष चढ़ा है कि चित्त नहीं चाहता किअपनेको मैं सबसे निराला ज्ञानमात्र अनुभव कर लूँ। जब तक यह मोह विष चढ़ा रहेगा, सर्वसे निराले ज्ञानमात्र अतंस्तत्त्वका अनुभव न कर सकेगा तब तक शान्तिका मार्ग मिलना असम्भव है।

कांचलीसे सर्पके विविक्तत्वकी तरह देहसे जीवकी विविक्तता—यह सम्यग्दृष्टि जीव देहमें मिला हुआ भी जीवको देहसे निराला अपने ज्ञान गुणके द्वारा समझ रहा है। ज्ञानस्वरूप निरखकर मान रहा है। यह ज्ञानी जानता हैकि इस देहमें यद्यपि जीव मिला है फिरभी यह देह कांचुलीकी तरह है। जैसे सर्पपर कांचुली चढ़ जाती है वह कांचुली सर्पके अंगसेही बनी है, कोई बाहरके पदार्थसे नहीं बनी, पर उस कांचुलीके आवरण होनेसे वह सांप अंधाहो जाता है और उस कांचुलीको अन्त में छोड़ता है, क्योंकि देहसे कांचली ने मूल सम्बंध छोड़ दियातो वह कांचुली दूरहो जाती है, सर्पको दिखने लगेगा। तो जैसे सर्प निराला है, कांचली निराली है उससे भी अधिक असम्बन्ध देह और जीवका है। कांचुलीतो उस सांपके ऊपरका चाम ही बन गया था पर देहतो जीवका कुछ नहीं बनता। इससे भिन्न बाहर आहार वर्गणाओंके परमाणु हैं फिर भी जैसे कांचुली निराली है, सांप निराला है ऐसेही यह शरीररूपी कांचुली निराली है और यह मैं जीव निराला हूं। जैसे कांचुलीसे सांप निकलता हैतो उसका भला होता है ऐसे ही देहसे यह जीव अलग हो जायगातो उसका भला होगा, मोक्ष होगा। यह मैं इस देहसे अत्यन्त पृथक हूं।

कार्यसिद्धिमें आराध्य देव शास्त्र गुरुकी आवश्यकताका चित्रण—यह ज्ञानी जीव चाह रहा है ज्ञानका शुद्ध विकास। तो जो जिस तत्त्वको चाहता है वह तत्त्व परिपूर्ण जिसे मिला है उसेतो आदर्श मानता है और उस तत्त्वके बताने वालेजो वचन हैं उसके ज्ञानसे आगे बढ़ता है, और उस तत्त्वके पालनहारजो उसको संघमें मिलते हैं उन्हें अपना गुरु मानता है। प्रत्येक कार्यमें देव, शास्त्र गुरुकी विधि बराबर बनी हुई है। चाहे रोटी बनानेका कार्यहो चाहे संगीत सीखनेका कार्यहो या व्यापार करनेका कार्यहो, उस उस विषयक देव, शास्त्र, गुरु होते हैं। रोटी बनानेके कार्यमें देव कौन है? जो बुआ, मौसी, आदिक बहुत बढ़िया रोटी बना लेती हैं वे उसके रोटीके देव हैं, शास्त्र कौन हैं? जो रोटी बनानेकी बातें हैं—जैसे इस तरह आटा गूँथो, फिर उस पर पानी डालकर उसको फूलनेदो। जब आटा इतना गुंथ जायकि उसे यदि उठाया जायतो थालीभी साथमें उठ जाय, इतना उसमें लोचआ जाय, फिर उसकी लोई बनाकर उसको बेलनेसे पसारा जाय। बेलनेके द्वारा गोलगोल रोटी ऐसी सरकती जाय कि उसे हाथसे न पसारना पड़े। इस तरह रोटी बनाओ, फिर उसको गरम तवे पर डाल दो। पहले पर्तको जल्दी पलट दो, दूसरी पर्तको देर तक धरी रहनेदो, और उसे आगपर धरकर तुरन्त अदल-बदल करते रहो, यदि वह रोटी कहीं फूट जायतो उसे चीमटेसे पकड़कर दाबदो। यों रोटी बनानेकी विधि चाहे किसी किताबमें लिखीहो या कोई मुखसे बता दे, वे शास्त्र रोटीके कहलाये और जो कोई पास पड़ोसका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिखाने वालाहो तो वह गुरु कहलायातो देव शास्त्र, गुरु बिनातो रोटी भी न बना पाये, वे रोटीके देव, शास्त्र, गुरु हुए। जैसे संगीत सीखना है तो संगीत सीखने वालेकी दृष्टि उस व्यक्ति पर होती है जो कोई बड़ा संगीतज्ञ हो, उसकी इच्छा होती कि मुझेतो ऐसा बनना है। इस प्रकारका भावहो जाता है संगीत सीखने वालेके। वहतो हुआ संगीतका देव। और संगी सिखानेके जो वचन हैं सा रे ग म प ध नी सा, सा नी ध प म ग रे। सा रे ग, रे ग म आदि, आदिक संगीतके जो सरगम बताये गए वे सब शास्त्र हुए और जब मोहल्लेमें या पास पड़ोसमें कोई सिखाने वाला मिल जायतो वह उसका गुरु हुआ। तो देव, शास्त्र, गुरुका सहारा लिए बिना वह संगीत नहीं सीख सकता। वेतो संगीतके देव, शास्त्र, गुरु हैं।

धर्मविकासके लिए आराध्य देव—यहां धर्मका विकास कोई देव, शास्त्र, गुरुका प्रसंग पाये बिना कर लेगा क्या? धर्मका देव कौन है? जहां धर्म पूर्ण विकसितहो गया, धर्म मायने आत्माका स्वभाव, चैतन्य स्वरूप, सहज ज्ञान स्वभाव, उसका जहां विकासहो चुका ऐसा आत्मा। जिसको अरहंत कहो, सकल परमात्मा कहो, निकल परमात्मा कहो, जिसके प्रति यह बुद्धि जगती है कि मुझेतो ऐसा बनना है, वे धर्मके देव हुए। धर्मके शास्त्र, जिन उपायोंसे धर्म विकास होगा उन उपायोंकी जो चर्चा है, जो शास्त्रमें उल्लेख है वे सब शास्त्र कहलाते, जैसे ग्रन्थ पढ़ते हैं, उपदेश सुनते हैं, तो यह सब शास्त्रकी उपासना कहलायी। कैसे अपने आपको पहिचानना, यह असाधारण गुण है, प्रत्येक पदार्थके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उसीमें ही रहते हैं, किसी भी बातको समझाया गया, वे सब शास्त्र हुए। और गुरु कौन? जो अपने गांवमें नगरमें साधु मिले, त्यागी मिले, जिससे वीतरागताका पाठ मिले वह कहलाया गुरु। तो सम्यग्दृष्टि जीव कैसे देव, गुरु धर्मको मानता है यह निर्णय उसके बराबर ठीक है। देव वह है जिसमें गुण पूर्ण प्रकट हों और दोष रंच न रहाहो। अब इस रूपमें किसी भी सम्प्रदाय वालेको कहा कि भगवान वह कहलाता, ईश्वर या देव वह होता जिसमें आत्माके गुण पूरे प्रकट हुए हों और दोष रंच भी न हो,तो कोई मना करेगा क्या? नहीं। वहतो मान जायेगा। हां अब इस आधार पर समझियेगा। जो दूसरेकी चिन्ता करे, जो साथमें स्त्री रखे, जिसके लड़के बच्चे हुए हों, ऐसा भगवान होता है क्या? भलेही गृहस्थावस्थामें पहले सबकुछ था मगर भगवानकी अवस्थामें ये कोई दोष नहीं होते। तो जिनका चारित्र निर्दोष है, जिनके आत्मामें दोष न रहा और इसी कारण सर्वज्ञ है, समस्त गुण परिपूर्ण विकसित हुए हैं वह है देव, वह है हमारा आदर्श, मुझे बनना है यह। देवकी श्रद्धा सम्यग्दृष्टि जीवके यथार्थ रहती है।

धर्म विकासके लिए आश्रेय धर्म और गुरु—धर्म क्या है? जो दयासे परिपूर्ण हो। अपनी दया भले प्रकार बन रही हो जिन उपायोंसे वे उपाय धर्मके उपाय कहलाते हैं। अपनी दया क्या है? अपने आपको अविकार स्वभावरूपमें प्रतीतिमें लेकर इस स्वभावके अनुकूल अपने ज्ञानकी वृत्ति बनाना यह है अपनी दया। जिन्होंने अपनी दयाकी है उनके निमित्तसे, सत्संगसे अनेक जीवोंकी दया पल जाती है, यह उसके नीचेकी दया पलती है वह सब आपेक्षिक है। उत्कृष्ट दया यहही हैकि अपने यथार्थ स्वरूपको मानकर विकारभावका वमन करदे और अपनेको नीरोग अविकार अनुभव करे, यह है अपनी वास्तविक दया। तो ऐसी दयासे परिपूर्णजो बताया है वह धर्मपालन कहलाता है। गुरु कौन होता है?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जो समस्त परिग्रहोंसे रहितहो। परिग्रहका संग ही क्लेशका कारण होता है, ऐसा निर्णय रखने वाला यह श्रावक परिग्रह रहित आत्मसाधक आत्माको गुरु मानता है। तोजो सम्यग्दृष्टि है वह यथार्थ देव, शास्त्र और गुरुकी प्रतीति रखता है।

मिथ्यादृष्टियोंकी कुदेव कुधर्म कुगुरुमें देवत्व धर्मत्व व गुरुत्वकी श्रद्धा—जो इसके विरुद्ध आत्मावोंमें, उपायोंमें देव, शास्त्र और गुरुकी श्रद्धा रखते हैं वे खोटी दृष्टि वाले हैं। जो दोषसहितको देव मानते वे कुदृष्टि वाले हैं। यदि कोई भक्त भगवानसे यह आशा रखता है कि ये भगवान मेरा काम सम्हाल देंगे, मेरा मुकदमा जिता देंगे, मुझे धनिक बना देंगे, इस प्रकारकीजो आस्था रखते हैं वे खोटी दृष्टि वाले हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, उन्होंने भगवानको कुदेव बना डाला। कहीं वे भगवान कुदेव नहीं बन जाते, वेतो जो हैं सो ही हैं। किन्तु इसने अपनी दृष्टिमें यह मान्यताजो करली है। कि ये महावीर भगवान मेरेको धन सम्पन्न कर देंगे। उसने भगवानका स्वरूप नहीं जाना और कुदेवके रूपमें उसने जिनेन्द्र देवकी मूर्तिको जाना। वहतो खोटी दृष्टि वाला है। जो खोटे रूप वालेको देव मानता है, फिर जिसके विषयमें यह धारणा बनी है कि यह भगवान हैं, यह इनकी भगवती हैं, ये इनके पुत्र हैं और इनकीजो भक्ति करता उनको ये भगवान सुख देते और जो भक्ति नहीं करता उनको दुःख देते, ये नरक स्वर्गमें भेजते। ये अपने ठाठसे घरमें रहते, ऐसे रूपमें जो किसीको देव माने, शस्त्रसे सज्जित अनेक विचित्र वेषभूषाओंमें जो देवको मानता है वह कुदृष्टि है। क्योंकि उससे फायदा क्या मिला? आत्माको समस्त संकटोंसे, बंधनोंसे छूटकर निर्वाण पाना है, यही कल्याण है। इस निर्वाणकी शिक्षा ऐसे दोष सहित आत्मासे क्या मिल सकेगी? वे खुद संसार सागरमें अटपट गिर रहे हैं। उनके तिरनेकी क्या आशा करना? जो जीव हिंसामें धर्म मानता है, बलिप्रथा यज्ञोंमें जीव होमना या देवी मानकर पशुपक्षियोंके गले काटना आदिक करते हुए भी जोधर्म मानते हैं उनका बड़ा क्रूर हृदय है, मिथ्या आशय है। वे विशेष पापका बंध करते हैं। धर्म के नामपर हिंसा करना, इसमें बहुत विकट पापबंध होता है। पहलेतो हिंसामें ही पाप हैं, फिर उसको धर्म मानकर करेंतो वह महापाप है। धर्म कैसेहो सकता? इसी प्रकार जो परिग्रहमें आसक्त है वे गुरु नहींहो सकते। कितनेही संन्यासी बाना धारी लोग बड़ा आरम्भ करते हैं, उनके बाग बगीचे है और खेतीमें दिलचस्पी है, फूल फुलवाड़ी आदिकका खुद प्रक्रम करते हैं और केवल भेषभूषा रखकर अपनेको संन्यासी गुरु प्रसिद्ध करते हैं, तो वेजो करेंगे वह उनका आशय है मगर ऐसे जीवोंको जो गुरु मानता है वह मिथ्यादृष्टि है, सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्माके स्वभावको जान चुका, इस कारण स्वभावके ही नातेसे देव, शास्त्र गुरु का निर्णय उसके बना है और मोही सम्यग्दृष्टि जीवने अपना आत्मस्वरूप नहीं समझातो वह बाह्य बातोंमें देव, शास्त्र, गुरुकी कल्पना करता है।

सम्यग्दृष्टिका दृढ़ निर्णय—सम्यग्दृष्टि जीव भले प्रकार निर्णय किए हुए है कि इस जीवकी परिणति इस जीवके परिणमनसे होती है। निमित्तनैमित्तिक बन्धन भी चल रहा है। जीव जैसे शुभ अशुभ भाव करता है उसके अनुरूप शुभ अशुभ कर्मोंका बन्ध होता है, उन बद्ध कर्मोंका जब विपाक खिलता हैतो उसका निमित्त पाकर जीवमें सुख दुःख होता है। इस जीवके सुख-दुःखका देने वाला कोई दूसरा जीव नहीं है, इस ही जीवके वेदनीय कर्मके उदयके अनुकूल साता और असाताकी सामग्रियां

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिलती हैं, धन वैभव सम्पदाको कोई दूसरा नहीं दे सकता। कोई अन्य जीव इस जीवका न उपकार रूप परिणमन कर सकता, न अपकार कर सकता। अपने ही कमाये हुए शुभ अशुभ कर्मके अनुसार अपनी दशा बीतती है, ऐसा निर्णय रखकर यह जीव किसी दूसरे जीवसे अपने सुखकी आशा नहीं रखता। वह अपने स्वभावदृष्टिसे ही अपनेमें आनन्द पाता है। अन्य देव, कुदेव, कितनी भी भक्ति से पूजे जायें व व्यन्तर आदिक देव पूजे जायें, यदि वे लक्ष्मी सम्पदा आदिकको देते हैंतो एकतो साक्षात् कोई देते नहीं, मानलो निमित्त बन जायें, जैसे मनुष्योंको मनुष्य धन देते हैं यो व्यन्तर देवभी कहींसे लाकर दे दें, पर खुदके पुण्यका उदयहो, खुदको धर्म साधन कियाहोतो ऐसा योग जुड़ जाता है। तो मूल बाततो अपनी पुण्यबन्ध हेतु भूत धर्मसाधना है। यदि यह धर्मसाधना और पुण्य अपनी गांठमें है तो अनेक लोग बाह्य कारण बन जायेगें इस जीवके लौकिक सुखके लिए। यदि पापका उदय हैतो कुटुम्बीजन भी इसके शत्रु बन जायेंगे। अनेक घरोंमें देखते ही हैं कि परस्परमें लोग एक-दूसरेको दुःखी करते रहते हैं, तो वह उनके पापका उदय है। तो अपने किए हुए शुभ अशुभ कर्मके अनुसार ही अपने पर बात बीतती है। ऐसा जानता है ज्ञानी, इस कारण किसी दूसरेसे कुछ मुझे मिलता है, वह कुछ देता है, इस आशाके त्यागनेसे वह अपनेमें प्रसन्नताका अनुभव करता है। ऐसे सम्यग्दर्शनसे युक्त ज्ञानी जब निरतिचार मूल गुणका पालन करता है तो उसे कहते हैं प्रथम प्रतिमाधारी श्रावक।

भविष्यकी विधेयता व ज्ञेयता—सम्यग्दृष्टि जीवको आत्मस्वरूपके बारेमें स्पष्ट निर्णय है—'यह हूं मैं अमूर्त ज्ञानमात्र', जिसका स्वभाव है कि जगतमें जितने भी त्रैकालिक वस्तु हैं उन सबको स्पष्ट झलका लेना. और जब सब पदार्थ स्पष्ट झलक गए तब यह कहाजा सकता है कि जो बात जिस देशमें, जिस कालमें, जिस विधानसे होना जिनेन्द्र देवने ज्ञात किया है वह सब बात उस देशमें, उस कालमें, उस विधानसे ही होगी। उसका निवारण करनेके लिए न इन्द्र समर्थ है, न कोई समर्थ है। यहां यह बात मुख्यतासे जानना कि जो बात जिस देशमें, जिस कालमें, जिस विधानसे, जिस योगमें होनी होती है उसे प्रभुने जाना है, प्रभुके ज्ञानके विषयभूत हैं समस्त पदार्थ, इस कारणसे ज्ञानके होनेमें विषय रूपसे कारण हैं ये पदार्थ और कार्य है ज्ञान। यद्यपि प्रत्येक वस्तुमें स्वतंत्र अस्तित्व है और स्वतंत्रतासे खुदका ही खुदमें परिणमन होता है फिर भी विषय-विषयीके रूपसे देखा जायतो विषयरूपसे कारण हैं समस्त सत् और विषयीरूपसे कार्य है प्रभुका ज्ञान। तब यह कहना होगा कि जिस विधानसे जो कुछ होता है वही भगवान ने जाना है, अन्य प्रकार नहीं जाना। अब इसे कोई गौण करके और इसकी मुख्यतादे, जो भगवानने जाना है वही होगा, अन्य कुछ न होगा। (यद्यपि ज्ञप्तिकी ओर से ऐसा निर्णय पूर्वक कहा जायगा), तो कारण कार्यके रूपसे यह बात रंच भी नहीं कहीजा सकती कि भगवान का ज्ञान कारण है और पदार्थोंका इस प्रकार परिणमन होना कार्य है। यद्यपि बात ऐसी है कि भगवान ने जाना सब और अब कह सकते कि जो जानासो ही होगा, किन्तु इसको ज्ञप्ति रूपसे ही कहा जायगा, उत्पत्ति रूपसे न कहा जायगा। उत्पत्ति रूपसेतो यह कहा जायगा कि जैसा जिस विधानसे जो कुछ होना है होता है और उसे भगवानने जाना है, विषय किया है। पदार्थ सब स्वतंत्र हैं, न पदार्थके परिणमनने प्रभुका ज्ञान बनाया, न प्रभुके ज्ञानने पदार्थका परिणमन बनाया फिर भी विषय विषयीरूप कारण कार्यकी दृष्टिसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहा जायगा, यों कि जो होगा वही भगवानने जाना, अन्य कुछ नहीं जाना। ज्ञप्तिकी ओर से कहा जायगा कि जो प्रभुने जानासो ही होगा। इन दो प्रकारके विवेचनोंमें निमित्त नैमित्तिक भाव और वस्तु स्वातंत्र्य दोनोंका एक साथ होना अविरुद्ध है यह बात जानना चाहिए।

द्रव्य और समस्त पर्यायोंका सम्यग्दृष्टिके यथार्थ निश्चय—सम्यग्दृष्टि जीव कैसी श्रद्धा रखता है, कैसा निर्णय रखता है जिसके कारण वह निराकुल है और दर्शन प्रतिमा धारण करनेका पात्र है। जो पुरुष यथार्थ तत्त्वको जानता है प्रत्येक द्रव्य अखंड सत् पदार्थ हैं और चूँकिवे द्रव्य हैं इस कारण निरन्तर परिणमन करते रहते हैं। वस्तु अखण्ड है, एक है, प्रत्येक एक है और उसका परिणमनजो भी है वह भी अखण्ड है। अखण्ड परिणमनको हम किस रूपसे किन शब्दोंमें लोगोंको बतावें या कोई गुरुजन हमें बतायें। कैसे बता सकते हैं? तो अखण्ड परिणमनको समझानेके लिए उसके शक्ति भेद करके, गुणभेद करके इन गुणोंकी ये पर्यायें हैं, इस प्रकार समझाया जाता हैं। प्रत्येक पदार्थ अखण्ड है, उसका परिणमन प्रति समय अखण्ड है। यहतो वस्तु स्वातंत्र्य है, और जितना विभाव परिणमन है जीव और पुद्गलका वह उपाधिका सन्निधान पाकर होता है, यह है मिमित्त नैमित्तिक भाव। सो उसके जो सुख होता, दुःख होता, शुभ अशुभभाव होते उनका निमित्त कारण कर्मदशा है। ये बाहरी पदार्थ ये मेरे परिणमनके कारण नहीं है, विभाव भी कर्मोदयका निमित्त पाकर होने वाले भाव है। यदि उपयोग बाह्य पदार्थोंका आश्रय करेतो विकार व्यक्तहो जाता है, इस कारण किसीभी बाह्य पदार्थसे मेरेको कष्ट नहीं है। किसीभी जीवके किसी प्रकारके व्यवहारसे मेरेको कष्ट नहीं है। कोई कैसा ही व्यवहार करे, आप परका ममत्व छोड़दो, कष्टका रंच अनुभव न होगा। जो कष्टहो रहा है वह ममताका कष्टहो रहा है, न कि दूसरे जीवोंकी क्रियावोंका कष्ट हो रहा है। जो इस प्रकारसे तत्त्वको जानता है वह है सम्यग्दृष्टि और जो इसमें शंका रखता है वह है मिथ्यादृष्टि।

विशेष तत्त्वज्ञानके अभावमें भी सहजात्मस्वरूपकी आस्थासे सम्यक्त्वका अधिकार—कोई पुरुष ऐसे भी होते हैं कि जो तत्त्वको ऐसी गहराईसे नहीं जानते, सिर्फ इतना समझते हैंकि प्रभु अरहंत देव सर्वज्ञ हैं और निर्दोष हैं, इस आधार पर यह निर्णय रखते हैं भव्यजन कि प्रभुने जो कहा है सो यथार्थ है। क्या कहा है, कैसा कहा है, उसकी सिद्धिकी क्या युक्ति है, इन बातोंमें नहीं पड़ता है कोई, तो इतनी ही श्रद्धासे कि जोकुछ प्रभु ने कहा उस सबका मैं आदर करता हूं, और उसके प्रति सही है यह ऐसा निर्णय रखता हूं, ऐसा भाव, ऐसा आदर बनाने वाला पुरुष भी सम्यग्दृष्टि हो सकता है। यहतो मनुष्योंकी बात है। पशुपक्षी मेंढ़क मछली ये कहां ७ तत्त्वोंके नाम जानते और कहां अरहंत जिनेन्द्रका नाम जानते? पर भीतरमें प्रकाश सब है। अपने स्वरूपको निहारकर, ऐसा कहीं व्यक्त परिणमन है कि यही मैं हूं और इस स्वरूपकी दृष्टि किये जावो—यह ही मोक्ष मार्गमें बढ़नेका उपाय है। इस तथ्यको वे जानते हैं, पर वे इन शब्दोंसे भी नहीं जानते। जैसे कोई पुरुष एक नई चीज देखे, तो दिख तो पूरी जायगी और उसका वे नाम तक भी नहीं जानते। ऐसे ही इन पशुपक्षियोंको दिखतो पूरा जायगा, जो प्रयोजन भूत तथ्य है वह ज्ञानमेंतो पूर्णआ गया मगर उसका नाम जानना या व्यवहार करना, दूसरोंको समझाना, यह कुछ नहीं है, पर मनुष्यतो उनसे भी बढ़कर हैं। वे इतना समझते हैं, कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रभु निर्दोष हैं, वीतराग हैं, और उन्होंनेजो कहा है वह सब सही है, मैं उसका आदर करता हूं, ऐसी आस्था वाला भी सम्यग्दृष्टि जीव है।

सम्यक्त्वकी महारत्नरूपता—जिस सम्यग्दर्शनसे युक्त होकर यह भव्य जीव अणुव्रतका पात्र होता है वह सम्यक्त्व रत्न रत्नोंमें महारत्न है। रत्न नाम पत्थरका नहीं है, जैसे कि सफेद पीले-नीले लाल मणियोंका रत्नका व्यवहार करते हैं। रत्नका अर्थ हैजो जिस जातिमें श्रेष्ठ है वह उस जातिमें रत्न है, जैसे कोई किसीको पदवी देता है कि यह जैनरत्न है तो उसका अर्थ यह नहीं है कि वह जैन पत्थर है, किन्तु उसका अर्थ है कि जैन समाजमें यह श्रेष्ठ है। ऐसी कितनी ही घटनायें हैं कि जिन शब्दोंका सही अर्थ न जाननेसे उपमा रूपमें अर्थ समझ लेते हैं। कुछ लोग जैन रत्नका क्या अर्थ समझते हैं कि ये रत्नकी तरह ऊंचे जन हैं, पर इस तरह लगानेकी भी जरूरत नहीं। लौकिकजनोंकी दृष्टिमें नहीं है रत्नका सही अर्थ। सीधा अर्थ है जैनोंमें श्रेष्ठ। जैसे एक सिंहासन शब्द है, लोग प्रायः कहते हैं कि सिंहासन बनवावो और उसके चार पाये शेरकी तरह बनवादोतो शेर कहलायगा और तख्त, चौकीकी भांति सीधे पाये बना दियातो कहते हैं कि यह क्या बना दिया यह अपना सिंहासन?' शब्दमें सिंहका अर्थ सिंह नहीं है किन्तु सिंहका अर्थ है श्रेष्ठ। सिंहासनका अर्थ है श्रेष्ठ आसन। आप कैसे ही आकारमें बनावें. शेरका पञ्जा बनानेकी जरूरत नहीं है। शोभित होना चाहिए वही कहलाता है सिंहासन, ऐसेही रत्न मायने श्रेष्ठ। समस्त रत्नोंमें महारत्न है सम्यग्दर्शन।

योगोंमें उत्तम योग ऋद्धियोंमें उत्तम ऋद्धि सिद्धियोंमें उत्तमसिद्धि सम्यग्दर्शन—यह सम्यग्दर्शन समस्त योगोंमें उत्तम योग है। जितने पौरुष हैं, प्रयत्न हैं उन सबमें सर्वोपरि प्रयत्न है तो वह है सम्यग्दर्शन। जगतकी जितनी भी ऋद्धियां हैं, ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धि, सुख साता, यशको जो बढ़ाने वाली ऋद्धियां हैं उन ऋद्धियोंमें महाऋद्धि है सम्यग्दर्शन। लोग चमत्कार पर अधिक जाते हैं। किसीका कुछ चमत्कार सुना, हो भी चमत्कार अथवा न भीहो, अनेक चमत्कारतो मायासे भी होते। जैसे इस तरहका कुर्ता बना लेना कि उसमें बारीख राख धर लेना और फिर हाथ छिड़कना, उसमें राख निकलेगी तो लोग कहेंगे कि यह बाबा बहुत ऊंचे हैं, इनके हाथसे भभूत निकलती है, ऐसा चमत्कार। लोग चमत्कार पर आकर्षित होते हैं मगर सबसे ऊंचा चमत्कार है सम्यग्दर्शन, जिसके होनेपर तुरन्त भी आकुलता नहीं रहती और उसके प्रसादसे यह जीव सर्वसंकटोंसे मुक्तहो जाता है। सम्यग्दर्शनसे बढ़कर कोई चमत्कारहो सकता है क्या? ऊपर चमकीले चमत्कार पर रंच भी आकर्षित न होना, किन्तु जब दृष्टि अपने आपके सहज स्वरूपमें लगीतो वह है ऐसा अद्भुत चमत्कार जिसके प्रसादसे ६४ प्रकारकी ऋद्धियां उत्पन्नहो जाती हैं। तपश्चरण भी थोड़ा चाहिए पर उस कोरे तपश्चरणसे ऋद्धियां पैदा नहीं होतीं। सम्यग्दर्शन सहित तपश्चरणहो, वह ऋद्धियों को उत्पन्न करता है तो समस्त ऋद्धियोंमें महान् ऋद्धि है सम्यग्दर्शन और जितनी भी सिद्धियां हैं उन सबको करने वाला है सम्यग्दर्शन। ऐसे सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न भव्य जीव दर्शन प्रतिमाका अधिकारी होता है।

सम्यग्दृष्टिकी देवेन्द्र नरेन्द्रवंदितता—सम्यक्त्व चमत्कार जहां प्रकट हुआ है वह देवेन्द्र, नरेन्द्र, मुनीन्द्र आदिकके द्वारा आदरणीय है। सम्यक्त्वके साथ चारित्र हैतो मुनीन्द्रोंके द्वारा भी वंदनीक है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सम्यक्त्वके साथ चारित्रहो अथवा नहो तो भी वह देवेन्द्र नरेन्द्रोंके द्वारा आदरणीय है। सम्यक्त्वकी ऐसी महिमा है कि व्रत नहीं भी है और सम्यग्दर्शन हैतो उस सम्यक्त्वके प्रतापसे वह स्वर्गके उत्तम सुखोंको प्राप्त कर ही लेता है।

(१, २) सम्यग्दृष्टिकी निःशंकितता व निःकांक्षितता—सम्यक्त्वके ८ अंग होते हैं, वे ८ अंग आभ्यंतरमें तो निश्चयरूपसे बर्तते हैं और बाह्यमें ये बहिरंग रूपसे बर्तते हैं। अपने आत्माके सहज स्वरूपमें शंका न होना, और शंका नहीं है इसी कारणसे सप्तभय न होना यह आभ्यंतर समृद्धि है। इस समृद्धिके प्रतापसे जिन भव्य आत्मावोंने परमात्मपद पाया है उनसेजो उपदेश प्राप्त होता है वह निःसंदेह उत्तम है, निर्दोष है, यथार्थ है, इस प्रकारकी आस्था होना यह निःशंकित अंग है। सम्यग्दृष्टि जीव अन्य बातोंको रंच भी नहीं चाहता है मूलमें। योंतो सम्यग्दृष्टि पुरुषको भूख लग जायतो रोटी खानातो चाहता है, चाह हुए बिना रसोईघरमें कैसे पहुंचेगा? पर यह परिस्थितिवश चाह है, मौलिक चाह नहीं है। मौलिक अभिलाषातो सम्यग्दृष्टिकी यह है कि मैं सहज ज्ञानस्वरूपमें उपयुक्तहो जाऊं, मग्नहो जाऊं, यह ही मूलमें श्रद्धा है और यह भावना निरन्तर है। परिस्थितिवशजो चाह होती है वह चाह निरन्तर नहीं रहती। भूख लगी, खा लिया, पेट भर गया, उसके बाद भी क्या वह भोजन चाहता है? पर आत्मस्वरूपमें मग्न होनेकी उसके २४ घंटे भावना रहती है, इस कारण कहा जाता है कि सम्यग्दृष्टि जीव निःकांक्षित है। तो यहां भी परिस्थितिवश भोजन चाहेगा, दुकान करना चाहेगा, आमदनी चाहेगा, लेकिन धर्मधारण कर धर्मके एवजमें कभी कुछ न चाहेगा। परिस्थितिवश इच्छाहो गई मगर धर्मपालनके एवजमें कभी लौकिक सुखकी भावना न जगेगी। जैसे मैं अमुक तीर्थकी वंदना करूं और मेरेको ऐसा लाभहो, यह सम्यग्दृष्टिकी भावना कभी नहींहो सकती। दुःख चाहे कितना हीआ जाय वहतो समतासे दुःख सहनेका पौरुष करेगा। मैं अमुक तीर्थ पर वंदना कर आऊं तो मेरा अमुक दुःख टल जाय, यह भावना सम्यग्दृष्टिके कभी नहीं रहती। वह निःकांक्षित है।

(३, ४) ज्ञानी पुरुषकी निर्विचिकित्सतता व अमूढ़दृष्टिता—ज्ञानी पुरुष अपने पर आ पड़े हुए दुःखमें अपनेको ग्लान नहीं बनाता। क्या करूं, बड़ी कठिन घटना आयी है, पता नहीं अब क्या होगा, ऐसी दुःखोंमें ग्लानता सम्यग्दृष्टि जीवके नहीं होती। कहते हैं ना क्यों ग्लान मनहो गया? दुःखको सहन करनेकी ज्ञानी जीवमें अद्भुत शक्ति है। सो ऐसी शक्तिका अंदाज करके लौकिकजनतो आश्चर्य करते हैं, पर वहां आश्चर्यकी कुछ बात नहीं, क्योंकि जिसने अविकार आत्मस्वभावका परिचय किया है उसको ऐसा सहन कर लेना बिल्कुल आसान बात है। कोई मुझ आत्माको पीटतो नहीं रहा। इस अमूर्त आत्मामें किसी परका प्रवेश ही नहीं है, कष्टकी क्या बात है? हां ज्ञानी पुरुष यदि रोये दुःख माने, तड़फे, विह्वलहो तो यह आश्चर्यकी बात है, पर ज्ञानी समतासे रहे, सुख दुःखमें समान बुद्धि रहे और अपने अभिमुख रहेतो यह कठिन काम नहीं है, यह आसान काम है। किन्तु इस आसान कामोंको भी लौकिक पुरुष जब न कर सके तो उन्हें आश्चर्य दिख रहा। भगवानहो जाना, निर्दोष सर्वज्ञहो जाना यह आसान काम है, और दुःख मानना, पर पदार्थोंका संग्रह करना यह बड़ा मुश्किल है। सकल परमात्माहो जाना यह आसान इस कारण है कि इसमें किसी दूसरेसे मिन्नत करनेकी जरुरत नहीं रहती।

http://sahjanandvarnishastra.org/

खुद हैं, खुदने खुदको जान लिया और यह खुद खुद हीके पास उपयोग द्वारा रह रहा है, ऐसे काममें क्या कठिनाई आनी चाहिए? कठिनाईतो इस काममें है जो दुकान चलाते हैं, आमदनी होती है, कुटुम्बका पोषण करते हैं, कुटुम्बसे रुचि रखते हैं। यह काम बड़ा कठिन है, क्योंकि इसमें पराधीनता बहुत है, यह खुदके अधिकारकी बाततो नहीं है। ये सब काम कठिन हैं, पर खुद-खुदमें रम जाय, यह काम बहुत आसान है, पर कोई कठिनको तो आसान मानतातो उसके लिए यह आत्माका आसान काम कठिनहो जाता, असम्भवहो जाता। सम्यक्त्व गुणका ऐसा प्रसाद है कि यह स्वयं का स्वाधीन काम है, यह सब उसके लिए स्पष्ट और आसान कामहो जाता है। तो आभ्यंतर में यह ज्ञानी जीव अपने दुःख आदिक परिणतियोंमें रँचभी ग्लानि नहीं रखता मायने क्रोध नहीं करता और बाह्यमें जो रत्नत्रयधारी साधुजन हैं उनकी सेवामें रहता हुआ रंच भी अशुचित शरीरको देखकर या उनके मलमूत्र निकलता हुआ रुग्ण है, उससे भी ग्लानि नहीं करता। एक मांको बच्चेसे ममता होती हैतो बच्चेकी टट्टी उठानेमें, नाक पौंछनेमें मां कभी ग्लानितो नहीं करती, क्योंकि उसका कारण है प्रेम, ममता। परन्तु मांकी ममता शुद्ध ममता नहीं है। वह विकार अज्ञान मोह, आशाके बलपर ममता है। उससे मेरा कुल चलेगा, यह बुढ़ापेमें मेरी सेवा करेगा, ऐसी कितनी ही आशायें लगी होती हैं, उनसे मिलकर ममता बनती है। किन्तु धर्मात्मा पुरुषोंको धर्मात्माके प्रति शुद्ध वात्सल्य है। तो ऐसे मौलिक प्रयोजनसे अनुराग करने वाले धर्मात्माजनोंकी सेवा करनेमें रंच भी ग्लानि नहीं आती है। दृष्टि उसकी रत्नत्रय गुणों पर है। ये सम्यग्दृष्टिके पूर्ण विकासकी बातें बतलायीजा रही हैं। जिसे आत्मप्रकाश मिला उसके कारण यह लौकिक चमत्कारोंमें मुग्ध नहीं होता। कोई ढोंगी पुरुष अपनेको देव जैसे ढांचेमें प्रकाशित करे, पर ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष उसमें मुग्ध नहीं होता। वहतो वीतराग सर्वज्ञको देव मानेगा, और ऐसेही उपायोंको वह शास्त्र मानेगा। तो ऐसा अद्‌भुत विकाससे युक्त पुरुष दर्शन प्रतिमाका पात्र है।

(५) **सम्यग्दृष्टिका उपवृंहण सम्बन्धित प्रयोग**—मोक्ष पुरुषार्थका पुरुषार्थीजो अभी पहली प्रतिमाको धारण कर रहा है उसका आशय कैसा होता है इसका निरूपण यहां चल रहा है, वह होता है सम्यग्दर्शन सम्पन्न। और इस सम्यक्त्वकी विशेषताके कारण उसमें गुणोंका विकास होता है जिसमें सम्यक्त्वके कुछ अंगोंका वर्णन किया। सम्यग्दृष्टिमें उपवृंहणकी भी प्रकृति होती है। उत्तम क्षमा, मार्दव, सरल रहना, तृष्णा न रहना, अपने इन्द्रियका संयम रखना, सत्य व्यवहार करना, लौकिक आकांक्षायें न होना, दानमें बुद्धि रहना, त्यागकी प्रकृति रहना, अपने स्वरूपको मैं सबसे निराला अमूर्त ज्ञानमात्र हूं इस प्रकार निरखना और अपने ही स्वरूपमें मग्न होनेका पौरुष होना यह सब गुण और इसका यथाशक्ति प्रयोग सम्यग्दृष्टि पुरुषमें होने लगता है और इसीसे ही अपने आत्माके धर्मकी वृद्धि होती है और इसी प्रयोगको निरखकर दूसरे जन भी अपने धर्ममें सावधान होते हैं। साथ ही अपने किसी साधर्मी पुरुषमें कोई कदाचित् अज्ञानसे, आसक्तिसे दोषहो जायतो उस दोषको वे यत्रतत्र प्रकट नहीं करते, क्योंकि उसमें धर्म तीर्थकी ओरसे लोगोंकी श्रद्धा हट सकती है, ऐसी स्वभावतः परिणति होती है सम्यग्दृष्टि जीवकी।

(६,७,८) **सम्यग्दृष्टिका स्थितिकरण, वात्सल्य व प्रभावनासे सम्बन्धित प्रयोग**—कभी यह ज्ञानी क्रोध, मान, माया, लोभके वश होकर उस धर्मसे खुद गिरेतो थोड़ी देरमें अपनेको सम्बोधन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करके अपनी सम्हाल कर लेता है और दूसरे लोग धर्मसे च्युतहो तो उन्हें भी इस तरह प्रतिबोधता है कि वह भी धर्ममें सामिलहो जाय। ज्ञानी जीवको अपने साधर्मीजनोंसे विशिष्ट अनुराग रहता है। उसके लिए कुटुम्बीजनोंका इतना महत्त्व नहीं है पर अपने साधर्मीजनोंका उसके दिलमें बहुत महत्त्व है। जिसने संसार संकटोंसे छूटकर मोक्षपथमें अपनेको लगाया है उसका प्रिय क्या होगा? तो मोक्षमार्गमें चलने वाले लोग प्रिय होंगे, दूसरा कोई प्रिय नहींहो सकता। और इसी कारण साधर्मीजनोंमें उनका अपूर्व वात्सल्य रहता है। जैन शासनमें सदैव अनुराग रहता है। जगतमें सार एक ज्ञानविकासके अन्य कुछ नहीं है। जैसे गौ बछड़ेसे प्रीति रखती है उसी प्रकार निष्कपट अकृत्रिम स्नेह रहता है साधर्मीजनोंमें। धन्य है वह स्वच्छता, परिणामोंकी निर्मलता कि जिसके होने पर रागका काम करें तो ऐसा साधर्मी जनोंमें अनुरागका काम करता है। सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्त्रयकी वृत्तिसे जैन शासनकी प्रभावना होती रहती है। और अपने आत्मामें गुणोंका विकास होता रहता है।

वास्तविक धर्मप्रभावना—ज्ञानका प्रसार करके जैन शासनका उद्योत करना यह है वास्तविक प्रभावना। लोग जैन धर्मकी प्रभावनाके लिए बहुत आडम्बर करते हैं। समारोह, रथयात्रा या अनेक बड़े-बड़े मंदिर बनाते, सब कुछ करते हैं लेकिन ज्ञानसारकी कोई योजना नहो और ज्ञानप्रसारका कोई भी कार्यक्रम नहोतो वह सब प्रभावनामें नहीं माना गया। इस बातको समंतभद्राचार्यने प्रभावना अंगका स्वरूप बताते हुए बहुत स्पष्ट किया है। "अज्ञानतिमिरख्याप्तिमपाकृत्य यथायथं, जिनशासनमाहात्म्य-प्रकाश: स्यात् प्रभावना" अज्ञानरूपी अंधकारको दूर करके फिर अपनी शक्तिमाफिक जैन शासनके माहात्म्यका प्रकाश करना प्रभावना है। किसलिए बड़े जलसा धार्मिक समारोह चलना चाहिए? इसलिए चलना चाहिए कि धर्मकी व्याख्या एकत्रित जनताको बतायी जाय और जनताको सम्यक्त्वका मार्ग मिले। यह बात अगर बनती है, इसकी योजना है कार्यक्रममें तो वह प्रभावनाका रूप रखता है, अन्यथा प्रभावनाके बजाय विडम्बना और विपत्तियां होती हैं। लोग यह जानने लगते हैं कि इस शासनके मानने वाले बहुत बड़े धनाढ्य होते हैं। चांदी सोनेका बड़ा सामान निकाला, लोगोंने देखातो लोग फिर ईर्ष्या करने लगते हैं, विरोधी बन जाते हैं, ऐसी घटनायें अनेक जगह हुई हैं और उपद्रव किया गया है। यदि साथ ही जैन शासनके सिद्धान्तोंको बताया जाता आम पब्लिकको, लोग इसके निष्पाप और महत्त्वशाली विवेचनको सुनतेतो जनता कह उठती कि धन्य है यह जैनशासन। इस जैनशासनके पालन बिना हमारा गुजारा नहींहो सकता, शान्ति प्राप्त नहींहो सकती, यह बात जनताके चित्त में बैठ जायतो वह प्रभावना होती और उसका सहयोग मिलता, इस कारण मूल बात है जैन शासनकी प्रभावनामेंकि जैन तत्त्वज्ञानका प्रसार करना, इस प्रकारकी वृत्ति ज्ञानी पुरुषकी होती है।

सम्यग्दृष्टि पुरुषका संवेग निर्वेद निन्दागर्हा उपशम भक्ति अनुकंपासे सम्बन्धित प्रयोग—ज्ञानी पुरुषमें स्वभावत: धर्ममें अनुराग होता है इसी कारण संसार, शरीर, भोगोंसे वैराग्य होता है। वह सतत् अपनी निन्दा करता है। जैसेजो धनका चाहने वाला पुरुष है, जिसके धनमें तृष्णा लगी है वह कितना ही लखपतिहो जाय फिर भी वह अपनी कमीको देखता है। अभीतो बहुत कमी है, गुजारा भी मुश्किल है। इस तरहका अनुभव करता है धनकी तृष्णा वाला और जो धन जुड़ा है उसपर दृष्टि नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाती कि यह अनुभव कर सके कि मेरे पासतो बहुत धन है। ऐसे ही जिसको धर्म की तृष्णा लगती है उसमें कितना ही गुणविकासहो जाय, वह अपने गुण विकासकी दृष्टि नहीं रखता, मेरेमें इतनाहो गया महत्त्व, इतना विकासहो गया, बल्किजो त्रुटियां हैं, जितनी कमी हैं याने कषाय जगती है उस पर उसकी निगाह होती है और वह अपनी निन्दा करता रहता है, और इतना ही नहीं, गुरुके समक्ष भी अपनी निन्दा करता है। सम्यग्दृष्टिके क्षमा परिणाम रहता है। कोई तत्काल अपराध करेतो उसको क्षमा रखता है। पहले अपराध कियाहो तो क्षमा रखता है और आगे भी क्षमाशील रहता है। जिसने वस्तु स्वरूपका ज्ञान किया उसमें यह विवेक रहता है कि यदि दूसरे पुरुषने गाली देदी या निन्दा करदी तो क्या हुआ? वे भाषा वर्गणाके वचन थे। उसके उस प्रकारकी कषाय थी, उससे उसकी भी प्रवृत्ति बनी, ये सब कार्य वहां हीतो हुए, मेरे अमूर्त ज्ञानमात्र आत्मामें क्या आया? वह क्षमाशील रहता है। देखिये—जब कोई किसी संकटमें फंस जाता है मानो किसी साम्प्रदायिक दंगेमें वह फंस गया, वहांसे गुजर रहातो वह प्रत्येक बातको समतासे सहन करता हुआ वहां किसीको कुछ उत्तर नहीं देता है। बड़ी कुशलतासे उस क्षेत्रसे निकल जाता है। ऐसे ही जहां संसारके अनेक संकट छाये हुए हैं, विचित्र कर्मबन्ध, कषायवान लोगोंका समागम, शारीरिक अनेक व्याधियां, अनेक प्रकारके जहां कष्ट हैं ऐसे इन दंगोंमें फंसा हुआ है यह जीवतो यह तो बड़ी कुशलतासे सबको क्षमा करता हुआ सारी बातोंको समतासे सहता हुआ अपने आपमें अपने बलको बढ़ाता हुआ वह इस संसार झंझटोंसे निकलना चाह रहा है। वह क्या दूसरे पर विरोध करेगा या द्वेष करेगा या गड़बड़ कार्य बनायगा। सम्यग्दृष्टि जीवके रत्नत्रयके धारी पुरुषोंमें और रत्नत्रय धर्म में भक्ति होती है, इनके प्रसादसे पार होऊंगा। पार होऊंगातो इस निज निश्चय रत्नत्रय धर्मके प्रसाद से पार होऊंगा। सहजस्वरूपकी भक्ति ही संसार शरीर भोगोंसे विरक्त रहनेका कारण है। इस ज्ञानी पुरुषने समस्त जीवोंको अपने स्वरूपके समान निरखा है, परमात्माके स्वरूपके समान देखा है। इस कारण सर्व प्राणियोंमें इसके दयाका परिणाम रहता है। सो भी स्वदयाके लिए पर दया और स्वदयाका ज्ञानी पुरुषके लिए एक ही लक्ष्य हैकि विषय कषाय मोह जालसे छूटकर निर्मोह अवस्थामें पहुँचूँ, यह ही भावना दूसरोंके लिए है, यह ही भावना स्वयंके लिए है, यह ज्ञानी पुरुष अपने साधर्मीजनोंमें वात्सल्य रखता हुआ धर्मके विकासके लिए प्रयत्नशील रहता है।

सम्यग्दृष्टिका निर्दोष प्रवर्तन—सम्यग्दृष्टि पुरुषके चित्तमें किसी भी प्रकारकी शंका नहीं है। श्री जिनेन्द्र देवने उपदेश किया है वह यथार्थ है, वस्तुके अनुरूप है, ऐसा उसका दृढ़ निर्णय है। परिग्रह सहित मुनि भी मोक्ष जाता है या परिग्रह कपड़ा ओढ़ लियातो क्या हुआ, भावोंमें भीतर निर्मलता जगेतो गृहस्थ भी मोक्ष जा सकता है, इस प्रकारका संशय इस ज्ञानी पुरुषके चित्तमें नहीं रहता। उसका एक ही निर्णय है कि बाह्य और आभ्यंतर समस्त परिग्रहोंसे रहित पुरुष ही मोक्षजा सकता है। ज्ञानीके चित्तमें कभी कोई शंका नहीं। किसी प्रकारका आत्मस्वरूपमें भय नहीं रहता। ज्ञानी पुरुष न इस लोकमें किसी पदार्थ की वाञ्छा रखता है, यह शरीरको अशुचि जानकर और आत्माको शुचि जानकर यह बाह्य पदार्थोंसे हटकर निज आत्मस्वरूपमें अपनी गति बनाता है और इसी कारण उसके कोई ग्लानिका परिणाम नहीं होता, दुःखी होनेका परिणाम नहीं हैं। यह रत्नत्रयके विरुद्ध चलने वाले व धर्मके नाम पर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपनेको गुरुदेव बताने वालेके प्रति कभी श्रद्धा नहीं जगती, न मनसे उसके प्रति प्रशंसाका भाव रहता, किन्तु यह ही निर्णय रहता है कि मोक्षमार्ग यह नहीं है। मोक्षमार्गतो यह निश्चय रत्नत्रय भाव है और इसी कारण किसी भी मिथ्यादृष्टि देव गुरु रूपमें प्रसिद्ध करने वाले जीवका प्रशंसा स्तवनका भाव नहीं रहता। ऐसा यह सम्यग्दृष्टि जीव दर्शन प्रतिमा धारण करनेका पात्र होता है।

धर्मतीर्थको निर्दोष रखनेका प्रयत्न—अब देखिये पहली प्रतिमाका व्रत लेनेके लिए ही कितनी तैयारी चाहिए आत्माकी, फिरजो देखा देखी या किसी कारणसे श्रावकके ऊंचे व्रत या मुनिके व्रत धारण कर लेता है तो भले ही अज्ञानी जनता उनका आदर करे दोष समझते हुए भी या न समझते हुए, जैन शासनको कलंकित करनेका ही प्रयत्न है श्रावकका भी और उन व्रत धारण करने वालोंका भी। यह कलंक आज न विकसितहो तो कुछ समय बाद विकसित होगा अतएव जैन शासनको अत्यन्त पवित्र रखनेके लिए श्रावकका यह कर्त्तव्य है जो शुद्ध वृत्तिसे या उत्तम श्रावककी वृत्तिमें रहना चाहता है वह यदि किसी मुनि दीक्षाके योग्य समझेंतो समर्थन करें और दीक्षा योग्य न समझेंतो वहां बराबर विरोध करें किं यह दीक्षाके योग्य नहीं है और हम इसमें शामिल नहींहो सकते। एक बड़े विवेककी बात है, धर्मका प्रभाव होना मुनिधर्म होकर श्रावक धर्म दोनोंको मानने वालेके आधार पर है।

ज्ञानी जीवके इहलोकभय, परलोकभय, अरक्षाभय व अगुप्तिभयका अभाव—देखिये कितनी बड़ी तैयारी है, दार्शनिक श्रावक होनेके लिए। मुझ आत्मामें इस लोकका भय नहीं है कि क्या होगा मेरे जीवनमें, कैसे कटेगी जिन्दगी? ज्ञानीको परलोकका भी भय नहीं है कि परलोकमें मैं क्या बनूंगा। ये दोनों भय इस कारणसे नहीं है ज्ञानीमें कि उसने अपनेको अमूर्त ज्ञानमात्रस्वरूप देखा और जाना कि इसमें भयकातो कोई काम ही नहीं है। जैसे अमूर्त आकाश है तो इसमें किसी दूसरेके द्वारा उपद्रवहो सकता क्या? ऐसे ही अमूर्त यह ज्ञानमात्र मैं आत्मा हूं, मेरे स्वरूपमें किसी दूसरेके द्वारा कोई उपद्रवहो सकता क्या? ज्ञानीके रंच भी भय नहीं हैं कि मेरी कौन पुरुष रक्षा करेगा? मैं बड़ा अरक्षित हूं। ऐसा अरक्षाका भी भाव ज्ञानी पुरुषमें नहीं होता। वह जानता है कि मेरेको दूसरेसे रक्षाकी क्या जरूरत? मैं स्वयं आत्मा जब मैं सत् हूंतो अपने आप सुरक्षित हूं। किसी सत् का विघात नहीं होता। रही जीवनके गुजारेकी बाततो जिस जीवमें इतना ज्ञान है उसके इतना पुण्यतो है ही कि उसके जीवनका निर्वाह अनायास चलता रहेगा। वह अरक्षाका भय चित्तमें नहीं लाता। मेरी रक्षाके साधन अच्छे नहीं हैं। अच्छा घर नहीं, मजबूत किवाड़ नहीं, कैसे सुरक्षा रहेगी, ऐसी कल्पना ज्ञानी जीवके नहीं होती। जोहै सो है। लोगतो व्यर्थ ही तृष्णाके भावको बढ़ाते हैं। **तृष्णा** बढ़ाते जाइये उसके सम्पद्राकी घटतीतो आसकती है मगर बढ़ती नहीं आ सकती, क्योंकि तृष्णा स्वयं एक पाप है। तो उस पापको रखते हुए उसके पुण्यरस नहीं बढ़ सकता, पापरस ही बढ़ेगा, और जिसको तृष्णा नहीं है योग्य कार्योंमें, योग्य उपकारमें, वह उदारताकी वृत्ति रखता है, त्याग दानकी वृत्ति रखता है तो उससे पुण्यरस बढ़ता है, पापरस घटता है और वह भविष्यमें अनायास ही सुख सुविधाको प्राप्त करता है। जैसे कुवेंमेंसे जल न निकाला जायतो होगा क्या कि वह जल सड़ जायगा, उसमें कीड़े पड़ जायेंगे। और यदि वह जल काममें आता

Version 1

रहेतो उसमें स्वच्छता भी बढ़ती है और और जलमें वृद्धि भी चलती है। ठीक इस प्रकारका कर्मविपाक और आत्मनिर्मलताका प्रसार इसी तरह होता है। यह ज्ञानी पुरुष जानता है कि मेरी अगुप्ति नहीं।

सम्यग्दृष्टि जीवके मरणभयका, वेदनाभयका, आकस्मिक भयका अभाव—ज्ञानी पुरुषको मरणका भय नहीं होता, क्योंकि वह जान रहा कि यहां मेरा कुछ नहीं है। मैं अमूर्त ज्ञानमात्र अकेला निज स्वरूप वाला हूं। यह जगह छोड़कर दूसरी जगह जाऊंतो ऐसा ही पूराका पूरा सर्वत्र हूं। मेरा मरण क्या? मैंतो मैं ही हूँ। यहांसे छोड़कर दूसरी जगह पहुंचा, मेरा तो विघात होता ही नहीं है। कुछ थोड़ाजो कुछ मरणके समयमें जीव कष्ट मानता है वह मोह रागके कारण कष्ट मानता है। यह छूटा, मेरा यह देह छूटा, अरे देह भी छूटा हुआ था पहले। तेरी सत्ता न्यारी, देहकी सत्ता न्यारी, ये घर मकान, दौलत छूटे हुएही हैं तेरे। तेरे स्वरूपमें इनकी दखल नहीं है। इसके लिए क्या छोड़ना है? और जितना छूटेगा लोक व्यवहारके नाते उससे कई गुना अभी ही एक सेकेण्डमें मिलेगा, पर वह ज्ञानी जीव न आगेके मिलनेकी वाञ्छा रखता है न वर्तमानके छूटनेका विषाद रखता है, उसकी दृष्टिमें निज सहज शुद्ध आत्मा सदैव रहता है। शरीरमें कोई वेदनाहो जायतो उसका भी भय नहीं मानता। जो हुआ, शरीरमें हुआ, यह आत्मारामतो इस शरीरसे निराला अमूर्त ज्ञानस्वच्छता मात्र है, इसको किस बातका भय? कुछ परिस्थितियाँ कभी होती हैं कि विकट ही रोगहो गयातो वह सहा नहीं जाता, ऐसा मानते हैं रोगी लोग। तो अत्यन्त विरक्तता है और स्पष्ट निराले आत्माको निरखा है तो शरीर पर कितनी ही वेदनायें आयें, शस्त्रघातहो जाय, अग्निमें जल जाय, इतनेपर भी ज्ञानी आत्माके उफ नहीं होता। भले ही यह बात श्रावकदशामें नहींहो सकती मगर यह अवश्य होने योग्य बात है। संत पुरुष कर सकता है, श्रावक भी अपनी शक्तिका प्रसार करता हुआ बराबर यह ही निर्भयताकी स्थिति बनाता है। ज्ञानी जीवको कभी अटपट कल्पनायें नहीं होती, आकस्मिक भय नहीं होगा। कहीं यहीं बैठे-बैठे बिजली न गिर जाय, कहीं तम्बू न गिर जाय, कहीं यह छत मेरे ऊपर न टूटकर गिर जाय, यो अटपट कल्पनायें करके मोहीजन अपनेको दुःखी अनुभव कर लेते हैं, किन्तु ऐसी सनक ज्ञानीको नहीं हुआ करती।

सम्यग्दृष्टि जीवके निःशल्यपना होनेके कारण गुण सम्पन्नताकी समृद्धि—ज्ञानी पुरुषके न मिथ्यात्वका शल्य है, न मायाचार का शल्य है, न परभवमें कुछ मैं चाहूं, पाऊं, सम्पन्न होऊं, इस भावकी शल्य है। ऐसा ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष दर्शन प्रतिमा धारण करनेका अधिकारी होता है और ऐसी ही गुणसम्पन्नताके कारण यह सम्यग्दृष्टि जीव देव, देवेन्द्र, नरेन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय होगा। देवेन्द्र हुए, सौधर्म आदिक इन्द्र नरेन्द्र हुए चक्रवर्ती आदिक। ऐसे महारुपुरुषोंके द्वारा भी आत्मधुन रखने वाला और इसी कारण अपने आपही योग्य सदाचारमें रहने वाला पुरुष पूज्य होता है, उसने चाहे व्रत भी न धारण किया हो, १२ प्रकारके व्रत न भीहों, यदि सम्यक्त्व सहितहो तो भी वह सबके द्वारा आदरके योग्य होता है। यदि साथ ही व्रत भी होतो सम्यग्दृष्टि भी है, सम्यक्चारित्रवान भी हैतो वह तो विशेषतया पूज्य पुरुष होता है। सम्यक्त्वके रहते हुए कोई आयु बन्धती हैतो देवायु ही बन्धती है। हां यदि कोई नारकी देव सम्यग्दृष्टि है उसके कोई आयु बन्धेगीतो मनुष्ययायु ही बन्धेगी, इसी कारण सम्यग्दृष्टि पुरुषके यदि कुछ भव शेष हैं तो उत्तम भवही प्राप्त होते हैं। तो ऐसी अनेक प्रकारकी सुख सुविधावोंमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

रहता हुआ यह ज्ञानी पुरुष उनसे विरक्त रहकर अपने अंतरंगमें प्रसन्नताका अनुभव करता है जिससेकि कर्म कटते हैं और इसका मोक्ष मार्ग क्षण-क्षण बढ़ता रहता है। ऐसे सम्यग्दृष्टि पुरुष दर्शन प्रतिमाका धारण करते हैं। तो उनके इस दर्शनप्रतिमाकी क्या स्थिति होती है यह सब इस प्रतिमाके लक्षणमें बतायाजा रहा है।

सम्यग्दृष्टिके तिरेसठ गुण—जो जीवसम्यग्दृष्टि होता है वही प्रतिमाका धारकहो सकता है। जिसने पहली प्रतिमाका धारण नहीं कर पाया, किन्तुजो सम्यग्दृष्टि है, उसमें कितनी विशेषतायें होती हैं, यह बात अभी बतलायी जा रही है। सम्यग्दृष्टि जीवमें मूल गुण ४८ होते हैं अर्थात् ये ४८ बातें सम्यग्दृष्टिमें होती ही हैं। आठ अंगोंका होना तथा ८ मद, ६ अनायतन, ३ मूढ़ता इन १७ दोषोंसे रहित होना। यों ये २५ गुण हैं और इनके अतिरिक्त ८ गुण और होते हैं, सम्वेग निर्वेद आदिकजो कि अभी कहे गए थे। तो २५+८ =३३ हुए और उनमें ५ अतिचार नहीं होते। निरतिचार सम्यक्त्व होनेसे पूर्ण कहलाये। तो
३३
५ = ३८ हुए, और ७ भयोंका त्याग, ३ शल्य न रहना, इस प्रकार ३८ + १० = ४८ ये तो सम्यक्त्वके मूल गुण हैं। सम्यक्त्व होते ही इतना आचरणतो होता ही है, इसके अतिरिक्त सम्यग्दृष्टिमें १५ उत्तर गुण होते हैं, अष्टमूल गुणोंका पालन और सप्तव्यसनोंका त्याग। दर्शन प्रतिमामें भी अष्टमूल गुणोंका पालन बताया जायगा, पर वह है निरतिचार। तो निरतिचार होनेके कारण वहां मर्यादित वस्तुका ही भक्षण होता है। तो इन मूलगुण और उत्तर गुणोंसे जो सम्यग्दर्शनके लिए बताया गया है उनसे अब यह अनुमान करिये कि मद्य, मांस, मधुके त्याग बिना, पंच उदम्बरके त्याग बिना सप्त व्यसनोंके त्याग बिना मनुष्यको सम्यग्दृष्टि कैसे कहा जा सकता?

सम्यग्दृष्टिके दुर्गतिबन्धहेतुभूत कर्मबन्धका अभाव—जिस जीवमें सम्यक्त्वगुण प्रधानतया है वह कल्याणार्थी पुरुषोंके लिए आदर्श है। ऐसे पुरुष यदि आयुका बन्ध करते हैंतो देवायुका बन्ध करते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव दुर्गतिके कारणभूत कर्मोंका बन्ध नहीं कर पाता। खोटे कर्मोंका बन्ध संक्लेश परिणामसे होता है, खोटे आशयमें होता है, पर जिसने आत्माके सहजस्वरूपका परिचय पाया है उसके खोटा आशय नहीं रहता। संक्लेश परिणाम भी नहीं रहता। यद्यपि सम्यक्त्व होने पर भी कुछ संक्लेश परिणाम रह सकता है, किन्तु उसकी एक सीमा है। बताया गया है कि तीर्थंकर प्रकृतिके बंधमें अधिकसे अधिक तीर्थंकर प्रकृतिका स्थिति बंध वह जीव कर सकता है जो संक्लेश परिणाम वाला सम्यग्दृष्टिहो। तो वहां संक्लेशका अर्थ विशेष नहीं, यथा सम्भव है, यानेजो पुरुष सम्यग्दृष्टि षोडश कारण भावना भा रहे हैं जिसके दर्शन विशुद्धि भावनाके साथ कुछ अन्य भावनायें भी चल रही हैं, वह यदि विशुद्ध परिणाम में है तो तीर्थंकर प्रकृतिकी स्थिति कम बनेगी और यदि संक्लेश परिणाममें है तो तीर्थंकर प्रकृतिकी स्थिति बहुत अधिक बनेगी। यद्यपि सुननेमें ऐसा लगता होगा कि संक्लेश परिणामसे तो तीर्थंकर प्रकृतिकी स्थिति कम होनी चाहिए और विशुद्ध परिणामसे अधिक होना चाहिए। किन्तु विचार करें कि तीर्थंकर प्रकृतिकी स्थिति अगर अधिक बनेतो उसका अर्थ क्या होगा? इसे संसारमें बहुत

http://sahjanandvarnishastra.org/

दिन रहना पड़ेगा और यदि उसकी स्थिति कम बंधीतो बिल्कुल स्पष्ट है कि वह संसारमें थोड़े समय रहेगा और मोक्ष जायगा। तो ऐसा संक्लेश परिणाम भी सम्भव है सम्यग्दृष्टिके, किन्तु वह सीमित है, यों सम्यग्दृष्टि पुरुष दुर्गतिके कारणभूत अशुभ कर्मोंका बंध नहीं करता।

सम्यग्दृष्टिके पूर्वानेक भवबद्ध दुष्कर्मोंका क्षय—जो पहले भवोंके बांधे हुए पापकर्म हैं उनका नाश कर देता है सम्यग्दृष्टि। देखिये कर्मोंका नाश करनेके लिए इस आत्माको कुछ कर्म या यत्न नहीं करना पड़ता, यहतो अपने भावोंको विशुद्ध बना रहा है : कर्म अपने आप झड़ जाते हैं, जैसे कोई धोती धोई गई, फैलाते समयमें वह धोती नीचे गिर गई, धूलमें वह लिपट गई, तो उस धूलको अलग करनेके लिए कुछ अलगसे यत्न नहीं करना पड़ता, किन्तु उस धोतीको धूपमें सुखानेके लिए फैला दिया, धोती सूख जायगीतो वह धूल जरासे झिटकेमें या बिना ही यत्नके वह अपने आप झड़ जाती है। यह एक मोटी बात कह रहे हैं, किन्तु यहां आभ्यंतरमें तो यह बिल्कुल ही सही है कि आत्मातो अपने भावोंको निर्मल करता है तो कर्म अपने आप झड़ जाते हैं। आशय अच्छा बनाना और कषायोंको दूर करना बस यह ही एक पुरुषार्थ है जिससे जीवका उद्धार होता है।

जिनमें सम्यग्दृष्टिकी उत्पत्ति नहीं ऐसी दुर्गतियोंका निर्देश—दुर्गतियां कौन हैं जिनके कारण भूत कर्मोंका बंध सम्यग्दृष्टि नहीं करते। ऐसी दुर्गतियां नीचेके ६ नरक़ हैं। यद्यपि पहला नरक भी दुर्गति है, किन्तु वहां सम्यग्दृष्टिका उपपाद सम्भव है, क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर पहले नरकमें उत्पन्नहो सकता है। इससे नीचे नरकमें नहीं। तो यहां उन दुर्गतियोंको बतला रहे हैं कि जिन दुर्गतियोंके कारणभूत कर्मोंको सम्यग्दृष्टि नहीं बांधता। यह नरकायु सम्यक्त्वोत्पत्तिसे पहिले बंधी थी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देव ये दुर्गति कहलाते हैं, अथवा यों समझ लीजिए कि सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वमें मरणकरके जिन-जिन जगहोंमें उत्पन्न नहो सकें वे सब दुर्गति कहलाती हैं। दुर्गति इसके अतिरिक्त और भी हैं, पर ये वे विशेष दुर्गतियां हैं कि जो संसार परम्पराके साधनोंको बनाये रखती हैं। सम्यग्दृष्टि जीव स्त्री पर्यायमें उत्पन्न नहीं होता, नपुंसकोंमें उत्पन्न नहीं होता। स्थावर विकलत्रय असंज्ञी जीव कुभोगभूमियां म्लेच्छ देश आदिकमें सम्यग्दृष्टिकी उत्पत्ति नहीं होती। चाहे उनके व्रत भी न होतो भी सम्यग्दर्शनका इतना माहात्म्य है कि सम्यक्त्वको प्राप्त करने वाला पुरुष दुर्गतियोंमें नहीं जाता। ऐसा ज्ञानी पुरुष दर्शन प्रतिमाका धारकहो पाता है। सम्यक्त्व ऐसा अद्भुत वैभव है कि जिसके समान वैभव तीन लोक तीन कालमें कुछहो ही नहीं सकता। ऐसा यह जघन्य पात्र सम्यग्दृष्टिका यह वर्णन चल रहा है, फिरजो प्रतिमाधारी बनेगा वह मध्यम पात्र कहलाने लगता है, ऐसे सम्यग्दर्शन युक्त जीव दर्शन प्रतिमाको धारण करता है।

दार्शनिक श्रावकके निरतिचार अष्टमूल गुणपालन तथा सप्तव्यसन त्याग—दार्शनिक श्रावक पदमें इसका कितना सदाचार होता है अब यह बताते हैं। जो जीव बहुत त्रसोंसे युक्त पदार्थोंको नहीं सेवन करता, मद्य, मांस आदिक पदार्थोंको नहीं सेवता, निन्दित द्रव्योंका सेवन नहीं करता वह पुरुष दर्शनप्रतिमाका धारक कहलाता है। दर्शन प्रतिमाके लक्षणमें बताया गया है—सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न, संसार, शरीर व भोगोंसे विरक्त, पंच परमेष्ठियोंके चरणोंकी शरण लेने वाला जीव दार्शनिक श्रावक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होता है। वह दार्शनिक श्रावक निरतिचार अष्ट मूल गुणोंका धारी होता है। तो मांस आदिकजो निन्द्य पदार्थ हैं, उनके भक्षणका तो प्रश्नही नहीं, किन्तु जिन पदार्थोंमें त्रस जीव उत्पन्न होनेकी योग्यताहो गई है ऐसे पदार्थोंको भी नहीं खाता, अर्थात् चलितरस पदार्थोंका भक्षण नहीं करता। अब कौन पदार्थ कितने दिनोंमें चलितरसहो जाता है, यह स्पष्टीकरण ग्रन्थोंमें तो नहीं मिलता, कुछका ही मिलता है। पर जैसे प्रसिद्ध है और हिन्दी भाषा ग्रन्थ बनाने वालोंने लिखा है उसके अनुसार कुछ मर्यादायें कही गई हैं आटा आदिककी, ऐसी मर्यादासे बाहरका पदार्थहो जानेपर उसमें त्रस जीव पैदा होनेकी योग्यताहो जाती है। जैसे कभी १५ दिन धरा रहे आटातो वह सीड़ाहो जाता है व उसमें लटहो जाती है, तो यह बतलावो कि वह लट किस दिन पैदा हुई? उसमें जीव किस दिन पैदा हुए? जो चलते हुए लट नजर आये वे एक ही रातमें नहीं बन गए। उसमें जीवोत्पत्तिकी योग्यता बहुत दिनसे चल रही थी और जीव उत्पन्न होना प्रारम्भहो रहे थे यह तो शुद्ध तीर्थ प्रवृत्तिके लिए माननाही होगा कि ये पदार्थ इतने दिन तक खायेजा सकते हैं, इसके बाद नहीं। तोजो प्रसिद्धि है वह इस प्रकार है कि बरसातके दिनोंमें ३ दिन का, गर्मियों में ५ दिन का व सर्दियों में ७ दिन का ही खायाजा सकेगा। अन्य अन्य पदार्थोंकी अन्य अन्य प्रकारकी मर्यादा है। यद्यपि सूक्ष्मतया यह भी पूरा घटित नहीं कियाजा सकता। कोई शिमला वगैरह स्थान जहां गर्मीमें भी ठंड रहती हैतो शोधक लोग बता सकेंगे कि वहां कुछ अधिक दिन भी आटा चल सकता है। कोई मुल्क सदैव वर्षा वालेहों तो वहां बहुत कम म्याद रह सकती है। फिर भी कुछ म्याद बताये बिना लोग कैसे उस आचरणमें चलें इसलिए यह म्याद बतायी गई है। तो दर्शन प्रमिमाधारी श्रावक ऐसा ही भोजन करता है जैसा भोजन साधु संतोंको दियाजा सकता है। इसके अब रात्रि भोजनका प्रसंग न रहेगा। यद्यपि रात्रि भोजन त्याग नामकी छठी प्रतिमा कही है फिर भी वहां मन, वचन, काय, कृतकारित अनुमोदनासे त्याग कहा है। यहां यह स्वयं नहीं करता। तो दर्शन प्रतिमामें रात्रि भोजनका त्याग है और अभक्ष्य पदार्थोंका त्याग है। सप्त व्यसनोंका त्याग है और इतना त्याग होनेके कारण यह जीव मोक्षमार्गमें गमन करने वाला कहा जाता है।

दार्शनिक श्रावककी दृढ़चित्तता, मायापाखण्डरहितता—यह दार्शनिक श्रावक अपनी भावनामें दृढ़ चित्त है, जो मद्य मांस आदिकका त्याग बताया गया है उस प्रतिज्ञाको नियमपूर्वक निभाव करता है। इसका मन चलायमान नहीं है, क्योंकि अविकार ज्ञानस्वभावके विकासका जिसके ध्येय बन गया है उसमें मायाचार, कपट, पाखण्ड नहीं होता, मायाचारमें सभी बातेंआ जाती हैं, फिरभी विशेषतया यह जानना कि जो पाखण्ड मायाचार करता है वह उसका बहुत खोटा परिणाम है, ऐसा पुरुष प्रतिमाधारी नहींहो सकता। त्यागी व्रती साधु श्रावक बहुत सरल होता है और सहजजो उसकी मुद्रा बनी, भेष बना उसके उठने बैठने बोलचालका जो सरलतया ढंग बनता है बस वह है पाखंडसे रहित। पाखण्डतो सम्यग्दृष्टि ही नहीं करता। प्रतिमाधारीकी बाततो विशेषतया है। जो पुरुष अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए किसी प्रकारका बाहरी काम, पाखण्डका कार्य करता है जैसे कि अपने बारेमें अपनी बुद्धिसे बात फैलाना कि मैं दूसरोंको सुखी करता हूं, गंडा तावीज देना और इस बुद्धिसे कि इसमें मेरा नाम यश फैलेगा, ये सब बातें पाखण्डकी हैं। पाखण्डका काम इस प्रतिमाधारीके नहीं रहता। जिसको लौकिक यशकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चाहहो वही पाखण्डमें पड़ता है। यह ज्ञानी जानता है कि मैं अमूर्त ज्ञानमात्र हूं। इस मुझको कोई नहीं जानता। जो लोग जानते हैं सो इस देहको जानते हैं और इस शकलसे ही मेरेको समझते हैं, पर मैं यह शकल ही नहीं हूं, यह शकल तो किसी दिन आगमें जल जायगी। यह देह मैं नहीं हूं, मैं अमूर्त ज्ञानमात्र हूं। अब इसको लोकमें यशकी क्या जरूरत? आवश्यकतातो यह है कि इस मुझ अमूर्त ज्ञानमात्र आत्मामें यथार्थ ज्ञानप्रकाशहो और यह मैं अपने आपके स्वरूपमें मग्न होकर रमता रहूं, बस यह ही प्रयोजन है मुझे, अन्य कुछ बात न चाहिए। ऐसा जिसका मन दृढ़ है वह पुरुष पाखण्ड कैसे करेगा?

दार्शनिक श्रावकको निदानरहितता व संसार शरीर भोग निर्विण्णता—यह दार्शनिक श्रावक निदानसे रहित है। न लोकमें धर्मके एवजमें सुखकी अभिलाषा करता है, न परलोकमें सुखकी अभिलाषा करता है। जो हो सो हो। मेरेको तो अपना सहजस्वरूप निरखकर इस हीमें उपयोग बसाये रहनेका काम है, अन्य कुछ बातपर मेरा अधिकार नहीं। जो मेरे अधिकारकी बात है, मेरे स्वरूपमें है बस उस हीमें रमता हूं, यही वृत्ति होती है ज्ञानी पुरुषकी और इसी कारण परलोक सम्बंधी कल्पना ही यहां नहीं करता और परलोक इहलोक है क्या? इहलोक मायने यह आत्मा, परलोक मायने उत्कृष्ट आत्मा। परका अर्थ उत्कृष्ट भी है, परका अर्थ दूसरा भी है। तो जो यह उत्कृष्ट चैतन्यस्वरूप है यह हीतो मेरा लोक है यह ही परलोक है। तो जो अपने आपके सहज स्वरूपमें निवास करता है उसको निदान नहींहो सकता। यह दार्शनिक श्रावक संसार, शरीर, भोगोंसे विरक्त है। संसार रागद्वेष विकारभावये कर्मका निमित्त पाकर हुए हैं नैमित्तिक हैं, मेरे स्वभाव नहीं है, ऐसा जानने वाला विकारमें राग नहीं रख रहा। यह शरीर अपवित्र है, हाड़, मांस आदिकका पिण्ड है, अत्यन्त भिन्न है, ऐसे शरीरसे क्या राग करना? ज्ञानी श्रावक को शरीरसे राग नहीं होता। भोग पञ्चेन्द्रियके विषयोंकाउपभोग, ठंडा गर्म, सुहा गया, रूखा, चिकना, कोमल, कठोर सुहा गया, यह स्पर्श इन्द्रियका भोग। मीठा, खट्टा, इष्ट रस सुहा गया, यह रसना इन्द्रियका भोग है। सुगंध, इत्र, तेल फुलेल आदिक सुहा गये, यह घ्राणेन्द्रियका भोग है। सुन्दर रूप, इष्ट रूप, सुहा गया, यह चक्षु इन्द्रिय द्वारा भोग है, और सुन्दर शब्द, राग रागनीके शब्द सुहा गए, यह कर्णेन्द्रियका भोग है, और दुनियामें नामहो, प्रशंसाहो, यशहो, ऐसी भीतरी बात सुहा गयी, यह मनका भोग है। इन भोगोंको सम्यग्दृष्टि जीव क्या चाहेगा? जिसने अपने ज्ञानको ज्ञानमें लेकर अनुभव करके अलौकिक आनन्द प्राप्त किया है वह इन असार पराधीन भोगोंकी कैसे चाह करेगा? यह दार्शनिक श्रावक भोगोंसे विरक्त है।

दार्शनिक श्रावककी पञ्चगुरुचरणशरणता—दार्शनिक श्रावक शरण मानता है तो अपने आपके स्वरूपको शरण मानता है। और चूंकि अपने स्वरूपकी सुध, अपने स्वरूपका विकास पंचपरमेष्ठियोंके गुणोंके स्मरणके निमित्तसे होता, सो वह पंचपरमेष्ठियोंके चरणोंमें वह शरण मानता है। कोई पुरुष यदि गुरुरहित है, ऐसा सोचता है कि मैं स्वयं बुद्धिमान हूं, मेरा गुरु मैं ही हूं, अध्यात्ममें कहते हैं ना कि आत्माका गुरु आत्माही है, और इस प्रकार किसी गुरुकी छायामें न रहे और अपनेको निर्गुरु रखकर जीवन बितायेतो उसमें वह आत्मसंयमन नहींहो पाता है, और प्रगतिकी दिशा प्रेरणा नहीं मिल पाती है जिस कारणसे वह आगे प्रगति नहीं करता। इसलिए गुरुवोंके चरणोंका शरण ग्रहण करना,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कल्याणार्थीके लिए आवश्यक है। ऐसे गुरु उत्कृष्टतया ये आचार्य, उपाध्याय, साधु हैं और कोई केवल गुरुभक्ति तक ही सीमित रहे, उसके आगे कोई आदर्श न देखेतो भी वह आगे प्रगति नहीं कर पाता। मुझे क्या बनना है, कैसे लक्ष्य सिद्ध करना है, यह ही जिसकी दृष्टिमें नहीं है वह प्रगति क्या करेगा? अच्छा मकान बनानेके लिए पहले अच्छे नक्शे ढंगसे बनावाये जाते हैं ताकि यहतो याद रहे कि मकान बनाते हुए में ऐसा बनाना है आगे चलकर और जिसके चित्तमें वह पूरा मकान बनवाये जानेका नक्शा नहो तो वह कैसे मकान बनवायगा? भले ही वह हाथ पैरकी क्रियायें कर रहा हो पर उसके दिशाभूल है, ऐसे ही अरहंत सिद्ध प्रभुकी सुध न होनेके कारण धर्ममार्गमें प्रवृत्ति करके आखिर मुझे बनना क्या है, मेरी स्थिति क्या बनेगी, यह बात जब चित्तमें नहीं है तो भी मोक्षमार्गमें प्रगति नहींहो सकती। इस कारण यह दार्शनिक श्रावक, मोक्षपक्षमें चलने वाला भव्य पंचपरमगुरुके चरणकी शरण ग्रहण करता है। उसके शरण ग्रहण करनेके मायने यह है कि उनके गुणोंमें अनुराग होना और गुरुजन जो मार्ग बतायें उस मार्गके प्रति श्रद्धान रखना कि मेरा भला इसही मार्गसे चलकर होगा, यह ही उन पंचपरम गुरुवोंके चरणोंकी शरण ग्रहण करना कहलाता है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव निरतिचार अष्टमूल गुण पालता हुआ, निरतिचार सप्त व्यसन त्यागको धारण करता हुआ निरन्तर आत्माकी धुन रखने वाला पंचपरम गुरुवोंके गुणोंमें अनुराग रखने वाला श्रावक दार्शनिक श्रावक कहलाता है।

निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः॥ १३८॥

अर्थ—निरतिचार पाँचों अणुव्रतों और सप्तशीलों को भी जो तीनों शल्यों से रहित धारण करता है वह व्रतियों में व्रतिक पद का धारी माना गया है

व्रतप्रतिमाधारी श्रावकका स्वरूप—इस आर्याछन्दमें दूसरी प्रतिमाके धारण करने वाले दार्शनिकका निरूपण किया गया है जो अतिचार रहित ५ अणुव्रतकोंतो लिखा है निरतिचार, पर ७ शीलोंको अपि शब्द कह कर कहा गया है। इससे यह प्रसिद्ध होता है कि ७ शीलोंके अतिचारतो कदाचित् लगते रहते हैं दूसरी प्रतिमाधारी श्रावकको, किन्तु ५ अुणव्रत निरतिचार ही रहते हैं, ५ अणुव्रत हैं—(१) अहिंसाणुव्रत, (२) सत्याणुव्रत, (३) अचौर्याणुव्रत, (४) ब्रह्मचर्याणुव्रत और (५) परिग्रह परिमाणाणुव्रत। तीन गुणव्रत हैं, (१) दिग्व्रत, (२) अनर्थ दण्डव्रत और (३) भोगोपभोग परिमाणव्रत। ४ शिक्षाव्रत हैं—(१) सामायिक, (२) प्रोषधोपवास, (३) अतिथि सम्विभाग और (४) सल्लेखना। इस प्रकारसे इन १२ व्रतोंका जो पालन करता है वह व्रती श्रावक माना गया है।

ज्ञानीकी दृढ़चित्तता व क्षमाशीलता—यह व्रती श्रावक दृढ़ चित्त है, जो प्रतिज्ञा ली है उससे चलित नहीं होता। कुछ उपसर्ग उपद्रव भी आये तो उन्हें भी समतासे सह लेता है। इसके परिणाम क्षमाशील हैं, उसने सर्व जीवोंको अपने समान स्वरूप वाला निरखा है और जाना है कि आत्मा तो सहज निरपराध है, जो कुछ विकार है वह सब कर्मका प्रतिफलन है। इस आत्माका क्या अपराध?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यद्यपि कर्मोदयमें इस आत्माके ही गुण विकृत हुए मगर स्वभावसे तो ऐसा विकृत नहीं होता। तो स्वभावदृष्टिसे दूसरे जीवोंको निरखता है इस कारण यह क्षमाशील बना रहता है।

(१) व्रतीश्रावककी दयाप्रवृत्ति व महारम्भसे निवृत्ति—यह व्रती श्रावक दया सहित अपनी प्रवृत्ति करता है। किसी भी जीवको मेरे द्वारा आघात न पहुंचे, ऐसा भाव रखता है, क्योंकि उसने सर्व जीवोंको अपने समान माना इस कारण जैसे किसी दूसरेकी चेष्टामें अपना दिल दुःखेतो ऐसे ही दूसरेका भी दिल दुःखता है, विघात होता है, इस कारण वह अपने समान ही परको मानने वाला व्रती श्रावक कोई भी व्यापार प्रवृत्ति ऐसी नहीं करता जिसमें दूसरे जीवोंको कोई बाधा पहुंचे और कदाचित् कभी थोड़ा प्रमादहो जायतो उसकी निन्दा और गर्हा करता है, अपने आपमें पछतावा करता है और गुरुके समक्ष दोषोंका निवेदन करता हुआ और उनका प्रायश्चित लेता हुआ उसका पालन करता है। यह व्रती श्रावक महान् आरम्भ वाले कार्योंका त्याग कर देता है, जैसे खेत जोतनेका व्यापार, भूमि खोदनेका व्यापार, पत्थर निकालनेका, संगमरमर निकालनेका, और और भी धातु उपधातु निकालनेका व्यापार, कोयला निकालनेका ऐसे व्यापारको नहीं करता। और भट्टा लगाना, जंगल फुंकवाना, तालाब सुखवाना, जंगल काटना, ऐसे महान आरम्भ वाले व्यापारको व्रती श्रावक नहीं करता, क्योंकि इस व्यापारमें बड़ी हिंसा है।

व्रती श्रावककी त्रसघातसे दूरवर्तिता—यह व्रती श्रावक त्रस जीवोंके घातको न तो स्वयं करता है, न दूसरोंसे कराता है, न करते हुएको अनुमोदता है, याने कृतकारित अनुमोदनासे उसके त्रस घातका त्याग है और वह मन, वचन, कायसे स्वयं अपने ही द्वारा मनसे विचारकर त्रस जीवोंके घातको नहीं करता, मायने त्रस घातका वह मनमें विचार नहीं करता। दूसरे पुरुषको भी प्रेरणा करे उसका घात कराये, ऐसा मनमें चिन्तन नहीं करता। कोई जीव त्रस घात करताहो तो उस पुरुषकी मन से अनुमोदना नहीं करता कि मनमें सोचले कि इसने अच्छा किया। इसी प्रकार वचनसे भी त्रस घातका परिहार करता है। वचनसे स्वयं त्रस कायिक जीवोंका घात नहीं करता। खोटे वचन बोलनेसे जीवोंको तकलीफ होती है। तो वचनोंसे हिंसा नहीं करता अथवा हिंसा सम्बन्धी वचन नहीं बोलता। तुझे मारूंगा, हिंसा करूंगा, आदिक वचनोंसे वह दूर रहता है। वचनसे त्रस घातकी हिंसा नहीं कराता। जैसे दूसरेको वचनों द्वारा प्रेरणा दे कि तू यह काम करले जिसमें कि त्रस घात होता है इसी तरह वचनोंसे अनुमोदना भी नहीं करता, किसीका किसीने घात कियाहो तो उसका वचनोंसे समर्थन करे, शाबासी दे, अनुमोदना करे, यह प्रवृत्ति व्रती श्रावककी नहीं होती। इसी प्रकार शरीरसे भी न त्रसघात करता है न शरीरसे कराता है और न करते हुएको शरीरसे अनुमोदता है। जैसे मुख हिलाना, हाथ हिलाना आदि इस प्रकारकी काय चेष्टाओंसे समर्थन नहीं करता है। यों ९ कोटिसे त्रस घातका, हिंसाका त्याग करने वाला जीव व्रती श्रावक कहलाता है।

(२) व्रती श्रावकके सत्याणुव्रतका पालन—सत्याणुव्रतमें यह जीव अपने वचनोंका बड़ा नियंत्रण रखता है। हिंसाके वचन न बोलेगा। जैसे कि लोग जरासी भी वातमें, दिल दुखनेकी कह देते हैं मारने छेदने आदिककी बातें ऐसे कर्कश वचन किसीको न बोलना। जो वचन दूसरेको चुभें ऐसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वचनोंको व्रती श्रावक नहीं बोलता। जैसे कि तू मूर्ख है, तू बैल है, तू कुछ नहीं जानता है, तू बड़ा दुष्ट है, मैं तुझे मारूंगा, छेदूँगा, ऐसे वचन व्रती श्रावक नहीं बोलता। यह दूसरेकी गुप्त बातोंको भी नहीं कहता। जैसे किसीका कोई गुप्त वार्तालापहो तो उसे प्रकट करनेमें यहतो मानता है कि इसे क्लेश होगा, कष्ट होगा, ऐसा जानकर वह गुप्त बातको प्रकट नहीं करता, किन्तु दूसरोंका जिससे हितहो ऐसे प्रिय वचन परिमित शब्दोंमें बोलता है। यह व्रती श्रावक धर्म सम्बंधी वार्ता ही अधिक करता है। चूँकि यह गृहस्थीमें है इस कारण कभी आजीविका आदिक सम्बंधी वार्ता करता है और आत्माका अनुभव करनेमें जो अलौकिक आनन्द पाया है उसका निरन्तर स्मरण करनेसे धर्म सम्बंधी वचन बोलनेमें इसकी प्रायः वृत्ति रहती है। यह कभी धन आदिक संग्रह करनेके लिए, दूसरोंको ठगने वाला मिथ्या उपदेश नही करता। यह कभी स्त्री पुरुषोंके रहस्यकी एकान्तकी बात प्रकाशित नहीं करता। किसी पुरुषने कोई बात कहीहो अथवा न कहीहो, वह एककी दूसरेसे चुगली नहीं करता, और कभी ऐसे वचन नहीं बोलता कि जिसमें धरोहरका अपहरणहो। जैसे कोई मानो ५ हजार रुपये किसीके पास रख गया, अब मांगते समय उसे ४ हजारका ही याद है, तो वह कहता है कि जो मैं ४ हजार रुपये तुम्हारे पास रख गया था वे दे दो, तो वह बड़ा प्रसन्न होकर बोलता, हां हांले जावो। उसे मालूम है कि १ हजार यह भूल रहा है लेकिन उसे न बोलना, ऐसा काम व्रती श्रावक नहीं करता। ऐसे ही दूसरेके कोई अभिप्राय जानले और ईर्ष्या के कारण उसके अभिप्रायको प्रकाशित करे, यह होती है ईर्ष्या रखने वाले पुरुषकी चेष्टा, ऐसे वचन व्रती श्रावक नहीं कहता, इस प्रकार यह व्रती श्रावक सत्याणुव्रतका पालन करता है।

(३) **व्रती श्रावकका अचौर्याणुव्रत**—अचौर्याणुव्रतमें दूसरेकी धरी, पड़ी, गिरी चीजको नहीं ग्रहण करता, यहतो है ही, पर बहुत मूल्यकी चीज अल्प मूल्यमें नहीं ग्रहण करता। यद्यपि देखनेमें ऐसा लगता है कि वहतो एक रोजगार है वह दे रहा है, खुश होकर भीदे रहा है, पर यहतो जानता है कि यह बहुत मूल्यकी चीज है, मैं इसे चौथाईमें ही ले रहा हूं तो इसकोतो पूरा चोरीका दोष है। व्रती श्रावक इस तरहसे अल्पमूल्यमें चीज ग्रहण नहीं करता। किसीकी चीज भूली पड़ीहो उसे भी नहीं लेता। थोड़ा भी लाभहो अपने रोजगारमें उसमें भी वह संतुष्ट रहता है। इस व्रती श्रावक ने अपने जीवनका लक्ष्य धनका संग्रह करना नहीं बनाया, लक्ष्य बनाया है कि मैं आत्माके सहज स्वरूपका अनेक बार अनुभव करता रहूं और इस सहज ज्ञानस्वभावके ज्ञानके अभ्याससे संसारके संकटोंसे छूट जाऊं यह ही लक्ष्य रहता है। जब धन संचयका लक्ष्य नहीं हैतो यह अपने आपही वृत्ति बनती है कि थोड़ा भी लाभहो तो उसमें भी संतोष रहता है। यह व्रती श्रावक मायाचारसे अथवा लोभवश होकर या क्रोध, मानके कारण किसी दूसरेके द्रव्यका हरण नहीं करता। इसकी मति विशुद्ध है, अपने लक्ष्यमें दृढ़ चित्त है, इस प्रकार यह व्रती श्रावक अचौर्य व्रतका पालन करता है।

(४) **व्रती श्रावकका ब्रह्मचर्याणुव्रत**—ब्रह्मचर्याणुव्रतमें इस व्रती श्रावककी अविकार ब्रह्मस्वरूप पर दृष्टि होनेसे निरन्तर आत्मतत्त्वकी धुन रहती है। और ऐसे ही परमार्थ ब्रह्मचर्यकी साधनामें उमंग रहती है। यह फिर बाह्य ब्रह्मचर्यकी भी सुरक्षा रखता है। यह शरीर अशुचिमय है। हाड़ मांस, लौहू, चाम, दुर्गन्धमय ऐसे देहको देखकर उसका रूप और सुन्दरता जो कि मनको मुग्ध करने वाली है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसको दुर्गन्ध और अशुचिके रूपमें ही देखता है, शरीर परजो चमक दमक है सो शरीरमें रहने वाले मल मूत्र आदि दुर्गन्धित चीजें उनके ऊपर चमड़ी होनेसे यह ऊपर कुछ सुन्दरता नजर आती है। उसका कारण ये दुर्गन्धित पदार्थ ही हैं। सो इस प्रकार अशुचिमय देहको निरखकर यह विकारके भावोंसे रहित रहता है, पर स्त्रीको बहिन बेटीकी तरह मानता है और किसी भी स्त्रीमें मन, वचन, कायसे किसी भी प्रकारका विकारभाव नहीं लाता और स्व स्त्रीमें ही यह संतोषभावसे रहता है। ऐसा यह व्रती श्रावक ब्रह्मचर्याणुव्रतका पालन करता है। इन सब व्रतोंके सम्बंधमें जब व्रती श्रावकका वर्णन चला था इसी ग्रन्थमें वहां विशेषतया वर्णन किया गया था, कैसे वह निरतिचार पालन करता है? अपने पुत्र पुत्री आदिकको छोड़कर अन्य मित्र स्वजन, परिजनोंका यह विवाह करने करानेमें अपना उपयोग नहीं लगाता। यह व्रती श्रावक अनंग अर्थात् कामसेवनके अंगसे भिन्न प्रकार क्रीड़ा नहीं करता, अयोग्य वचन नहीं बोलता, स्वस्त्रीमें भी अतीव तृष्णा नहीं रखता और जो कुशील स्त्री हैं उनसे रंचमात्र भी वचन व्यवहार नहीं रखता। उनके यहां आना-जाना, यह प्रवृत्ति नहीं करता। ९ बाड़ बतायी गई हैं, उनके विरुद्ध प्रसंगोंका परिहार करता हुआ बाड़ोंकी रक्षा करता हुआ यह आत्मधुनमें रहकर अपने ब्रह्मचर्याणुव्रतका पूर्ण पालन करता है।

(५) **व्रती श्रावकका परिग्रह परिमाणाणुव्रत**—व्रती श्रावक जिन्होंने इन पौद्गलिक पिण्डोंको अपनेसे भिन्न निरखा है और उन पौद्गलिक पिण्डोंसे अपनेमें कुछ भी नहीं आता। सुख-दुःख सब कुछ खुदकी कल्पनासे ही होते हैं, जिनका ऐसा निर्णय है वे बाह्य पदार्थोंमें तृष्णा कैसे करेंगे? लोभका नाश कर संतोष रसायनसे ही यह व्रती निर्दोष रहता है। यह समस्त जगतके समागमको विनश्वर जानता है अतएव उसके तृष्णा न रही, लेकिन जब तक यह गृहस्थीमें है तब तक कुछ परिग्रह रहे बिना जीवन नहीं चल सकता, अतएव परिग्रहतो है किन्तु उनका परिमाण कर लेता है। मुझे अधिक परिग्रहकी आवश्यकता ही नहीं है ऐसे निर्णयके कारण वह वर्तमान परिस्थितिके अनुसार परिग्रहका परिमाण करता है, और उसमें कभी भी यह अतिचार नहीं लाने देता कि कभी कोई परिग्रह परिमाणको कम करले। उसके एवजमें किसी दूसरे प्रकारका परिग्रह बढ़ा ले या कोई भीतरकी सीमातोड़कर उसे परिमाण समझकर कुछ बढ़ाले ऐसी वृत्ति व्रती श्रावककी नहीं होती। तो निरतिचार ५ अणुव्रत जिस श्रावकके पलते हैं और ७ शीलका भी जिसके पूर्ण अभ्यास चलता है, कुछ-कुछ अतिचार भले ही लगें मगर उनकी भी प्रतिज्ञाको निभाता है वह पुरुष व्रती श्रावक है। मुख्य ७ शीलोंमें यदि पूर्णतया निरतिचार पालनहो तो फिर अगली प्रतिमा किसलिए धारण करता है? दूसरी प्रतिमासे आगेकीजो प्रतिमाये हैं, परिग्रह त्याग प्रतिमासे पहले पहलेकी वे ७ शीलोंकी पुष्ट करनेके लिए ही हैं। जैसे तीसरी प्रतिमासे सामायिक शिक्षा व्रतका पूर्ण पालन है, चौथी प्रतिमामें प्रोषधोपवास व्रतका निरतिचार पालन है। ऐसे निरतिचार शील अगली प्रतिमामें पलते हैं, फिर भी यह व्रती श्रावक निरतिचारोंको पालनेका ही ध्यान रखता है। यों बारह व्रत पालन कर अपने जीवनमें आत्मतत्त्वकी दृष्टिका दृढ़ अभ्यास बनाता है।

(६) **व्रतीश्रावकका दिग्व्रतनामक अणुव्रत**—अब ५ अणुव्रतके बाद ३ गुणव्रतका निरूपणआ रहा है। उन गुणव्रतोंमें प्रथम गुणव्रत है दिग्व्रत। इस व्रती श्रावक ने अपने लोभ कषायके विनाशके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

लिए सर्व दिशावोंका परिमाण कर लिया है कि मैं अमुक-अमुक दिशामें इतने क्षेत्रसे बाहर न जाऊंगा, न सम्बंध रखूँगा, ऐसा दिग्व्रत लेनेका प्रयोजन है लोभका विनाश। कभी यह तीर्थयात्राके लिए अथवा अन्य धार्मिक कार्योंके लिए कुछ मर्यादा से बाहर भी जाता है, पर वहां लोभकी अगर प्रवृत्ति रखेगा या साथ ही यह सोचेगा कि यहां तकतो आये ही हैं, यहां यह चीज सस्ती मिलती है, इसे लेते चलें, काफी लाभ मिल जायगा, तो ऐसा करने पर उसके दिग्व्रतका भंगहो जायगा। दिशावोंकी मर्यादा करनेके लिए प्रसिद्ध क्षेत्रोंका निर्देश इसके लिए बहुत स्मृति रखने वाला होता है। जैसे उत्तर दिशामें हिमालय पर्वत तक, दक्षिणमें कन्याकुमारी महानदी तक, इस प्रकार किसी प्रसिद्ध क्षेत्रका या किसी पर्वतका नाम लेकर मर्यादा करली जाती है। अथवा मील कोशका परिमाणकी मर्यादा करली जाती है। जो मर्यादाकी है उसमें बाहर न जाना यह दिग्व्रत कहलाता है। उस मर्यादाके बाहर यह पत्र भी न डालेगा, वहां किसी अपने आदमीको भी न भेजेगा। कोई सोचे कि मेरातो नियम है कि मैं हिन्दुस्तानसे बाहर न जाऊंगा, किसी कामके लिए दूसरे आदमीको भेज दे विदेशतो ऐसा यह व्रती नहीं कर सकता है, क्योंकि दिग्व्रतका प्रयोजनतो लोभ कषायका विनाश करना है। लोभवश हीतो वह दूसरेको भेजता है। तो जो दिशावोंकी मर्यादाकी उससे बाहर नतो किसीको भेजेगा, न वहांसे कोई चीज मंगायगा, न पत्र व्यवहार करेगा, न किसी समय ऐसा सोचकर कि चलो पूर्व दिशामें मर्यादा कम करलें, पश्चिम दिशामें मर्यादा बढ़ालें, क्षेत्र उतनाका ही उतना रहेगा, ऐसा सोचकर किसी दिशा की मर्यादा बढ़ा लेना यह व्रती श्रावक न करेगा। यह तो कभी-कभी दिग्व्रतके अन्दर भी कुछ दिनकी मर्यादा लेकर सीमित क्षेत्रोंमें ही आना जाना रखेगा। इसकी दृष्टितो और कम क्षेत्रोंमें अपने आपकी वृत्ति रखना है। वह मर्यादासे बाहर क्षेत्र बढ़ाये यहतो कभी सोच ही न सकेगा। तो इस प्रकार दिग्व्रतमें जो मर्यादाकी है उसे कभी भूलेगा नहीं। उससे बाहर जानेकी इच्छा करेगा नहीं, और कितना ही प्रयोजनहो, उससे आगे जायगा नहीं। हां कोई धर्म कार्यहो, तीर्थ यात्रा आदिकहो, विशुद्ध धर्म कार्य जहां अन्य कषायका कोई विचार स्थान रंच नहीं है, कभी बाहर ऐसा जाना पड़ेतो यात्रा कर सकेगा। जब ऐसा सोचले कि अमुक तीर्थ इतनी दूर हैतो भला यह है कि वहां तकही दिग्व्रतकी मर्यादा रख ले ताकि किए हुए व्रतमें कभी भी किसी प्रकारकी कोई त्रुटि न आ सके।

(७) अनर्थदण्ड विरति नामक द्वितीय गुणव्रत और उसके प्रकार—व्रती श्रावकके अनर्थ दण्डव्रतकी अब चर्चाकी जा रही है। अनर्थ दण्डका अर्थ है—जो कार्य कुछभी प्रयोजनको सिद्ध नहीं करता और नित्य पापको ही करता है वह सब अनर्थ कहलाता है और दण्ड भी है, अर्थात् बिना प्रयोजन पापको अनर्थ दण्ड कहते हैं। इन अनर्थ दण्डोंका त्याग करना अनर्थ दण्ड व्रत कहलाता है, ऐसे अनर्थ दण्ड ५ हुआ करते हैं। जिन अनर्थ दण्डोंमें कोई इष्ट धन धान्यका लाभहो या अनिष्ट शत्रु आदिकका नाशहो, ऐसा कोई भी कार्य सिद्ध नहीं है और उसके संकल्पमें, संस्कारमें निरन्तर पापका बंध होता है। ऐसे अनर्थ दण्ड ५ हैं, और ५ ही नहीं, अनेक हैं। उन अनर्थ दण्डोंको जुदे रूपमें ५ कह दिया है, किन्तु हैं अनेक प्रकारके, और उनसबमें अनेक प्रकारके अनर्थ हैं, ऐसे अनर्थ ५ तरहके हैं। अपध्यान, पापोपदेश,

Version 1

प्रमादचर्या, हिंसादान और दुःश्रुति। इनके त्यागको अनर्थदण्ड विरति कहते हैं, सो ये विरति भी पांच प्रकारके हैं।

(क) अपध्यान अनर्थदण्डविरति—अपध्यानका अर्थ है कि दूसरेके दोषोंको ही ग्रहण करना, दूसरेके धन सम्पत्ति आदिककी चाह रखना, पर स्त्रीका अवलोकन करना, दूसरेके झगड़ेको देखना, ऐसा कार्य करनेमें जो ध्यान बिगड़ता है वह अपध्यान नामक अनर्थदण्ड है। दूसरे पुरुषोंके दोषही दोष देखना और उन दोषोंको चर्चा करनेमें दिल बहलाना ऐसी क्रिया करनेसे इस करने वालेका कौनसा प्रयोजन सिद्ध होता? न आजीविकामें सहयोग मिले, न धर्ममें। दूसरेकी लक्ष्मीको, धन सम्पदाको, निरख निरखकर चाह करना, ईर्ष्या करना, बुरा चिन्तन करना, इस विचारमें इस जीवको कौनसा प्रयोजन सिद्ध हुआ? कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं है। तो यह अनर्थ दण्ड है, परस्त्रीको देखना, इसमें कौनसा प्रयोजन सिद्ध होता? व्यर्थ दूसरेका लगाव रखा, लौकिक दृष्टिसे भी परस्त्री उसकी बन न जायगी, उस पर कुछ अधिकार नहीं है और न कभी कोई उसका लाभ होगा, अथवा कदाचित् छिपे-छिपे लाभ भीहो जायतो आत्माको उससे कौनसा लाभ होता? उल्टा पाप का बंध है, तो यह ऐसा कार्य है कि जिसमें अनर्थ बहुत है। दूसरे झगड़ रहे हैं तो उनका झगड़ा देखनेमें बड़ा दिल लगता है, और कभी उनका झगड़ा शान्तसा होता दिखाई देतो यह खेदसा मानने लगता कि अब हमारा देखनेका मजा मिट रहा है, तो दूसरेके झगड़ेको देखना यह अपध्यान है। दूसरेका बुरा चिन्तन करना, विनाशका या बरबादीका भाव रखना यह सब अपध्यान अनर्थदण्ड है। इन अनर्थदण्डोंको व्रती श्रावकके त्याग रहता है। अपध्यानके त्यागको अपध्यान विरति नामक अनर्थदण्ड विरति कहते हैं।

(ख) पापोपदेशविरति नामक अनर्थदण्डविरति—दूसरा अनर्थदण्ड है पापोपदेश। जो कृषि, पशु पालन, वाणिज्य आदिका उपदेश किया जाता है अथवा किसी पुरुष स्त्रीके संयोग विषयक उपदेश किया जाता है वह पापोपदेश नामका अनर्थदण्ड है। दूसरेको खेत जोतनेका उपदेश करना अथवा बताना कि यह इस तरह जोता जाता है, इस तरह पानी निकाला जाता है, यों जंगलमें आग लगायी जाती है, तृण घास आदिक इस तरह उखाड़े जाते हैं आदिक आरम्भका उपाय बताना यह आरम्भ विषयक उपदेश वाला पापोपदेश है। पशुवोंके बोलने अथवा पशु विषयक वार्ता करना इन उपायोंसे गाय, भैंस, घोड़ा, हाथी, ऊंट, गधा आदिक पाले जाते हैं और उनकी संख्यामें वृद्धिकी जाती है आदिक कथन करना यह सब पापोपदेश है। वाणिज्य विषयक वार्ता करना, खरीदने बेचनेकी वार्ता बताना इस देशसे गाय, भैंस, बैल, ऊंट, हाथी आदिक लाये जायें और इस अन्य देशमें बेचे जायेंतो बड़ा लाभ होता है। इस तरह पशुओंके व्यापारका उपदेश करना पापोपदेश है। पहले समयमें नौकर बेचे जाते थे, जो जिनके नौकर हैं बसवे वहीं रहेंगे, दूसरी जगह न रहेंगे। यदि यह दूसरेको बेच देवेतो वह नौकर दूसरी जगह रहने लगेगा। जैसे गाय, भैंस जिसके हैं उसके ही घर रहेंगे। यदि दूसरे को बेच दें तो फिर उस दूसरेके घर रहेंगे। तो ऐसे तिर्यञ्चोंका या नौकरोंका व्यवसाय बताना, इस देशसे लाये, इस देशमें बेचेतो इसमें लाभ होता है, ऐसा वाणिज्यका उपाय बताना अनर्थ दण्ड है। ऐसे अनेक प्रकारके उपदेश सब पापोपदेश कहलाते हैं। अथवा जाल बनानेकी तरकीब बताना, जिस जालमें मछली, चिड़िया आदिक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

फांसकर मारी जाती हैं। पापकार्यसे जो आजीविका करने वाले लोग हैं उनको उपदेश करना कि इस प्रदेशमें हिरण, सूकर, तीतर, मछली आदिक बहुत हैं तो यह बधिकोंके लिए उपदेश किया यह भी अनर्थदण्ड है। पुरुष और स्त्रीके संयोग विषयक, विवाह विषयक, उनके भोग विषयक उपदेश करना यह पापोपदेश नामक अनर्थ दण्ड है। इन सब अनर्थ दण्डोंका परिहार करना अनर्थदण्ड स्थान कहलाता है। मनुष्य को इतनी साधनातो रखना ही चाहिए कि जिनसे अपना कोई प्रयोजन नहीं सिद्ध होता है, ऐसे व्यर्थके कार्य न करना, यह भी एक तपश्चरण जैसा ही रहेगा। तो व्रती श्रावक पापोपदेश नामक अनर्थ दण्डका त्यागी रहता है।

(ग, घ, ङ) प्रमादचर्याविरति, हिंसादानविरति एवं दुःश्रुति नामक अनर्थदंडविरति—तीसरा अनर्थदण्ड है प्रमादचर्या। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके व्यापारमें निष्प्रयोजन प्रमाद करना, बिना प्रयोजन वनस्पतिको काटना आदिक प्रमादचर्या अनर्थ दण्ड कहलाता है। अपने घरमें कुत्ता, बिल्ली, तोता, मैना वगैरह पालना यह भी अनर्थ दण्ड है, क्योंकि ऐसे जीवोंके पालनेसे खुदका कुछ प्रयोजन नहीं, दूसरे वे हिंसक जीव है। उनको हिंसामें इसने सुविधादी, यह सब अनर्थ दण्ड है। कोई प्रयोजन नहीं, भूमि खोद रहे हैं, पत्थरोंको चूरा कियाजा रहा है, बिना प्रयोजन जल बखेराजा रहा है। अग्नि और वायुका व्यापार करना आदिक कार्य प्रमादचर्या कहलाते हैं। ऐसे अनर्थ दण्डोंका त्याग करना अनर्थ दण्डव्रत है। हिंसादान नामक अनर्थदण्ड जैसे बिलाव, कुत्ते आदिकको रखना, शस्त्र, लोहा आदिका विक्रय करना लाख, खल आदिक का ग्रहण करना ये सब अनर्थ दण्ड हैं, क्योंकि बिलाव आदिक हिंसक जंतुवोंके पालन करनेसे उनके द्वारा हिंसा बनती। सो पालन करने वाला हिंसाका समर्थक कहलाता है। लोहा आदिक शस्त्र, लाख, विष वगैरह इनको देना, इनका ग्रहण करना ये सब अनर्थदण्ड कहलाते हैं। घातक जीवोंको पालनेसे उनकी प्रकृति घात करनेकी जो बनी है उसका प्रयोग करते हैं, अनेक जीवोंकी हिंसा करते हैं। तलवार आदिक दूसरेको देना, लाख, अफीम, चरस, गांजा आदिका व्यापार करना यह सब अनर्थ दण्ड कहलाता है। इनका त्याग व्रती श्रावकके होता है। पांचवां अनर्थ दण्ड है दुश्रुति। पुस्तकोंमें गंदी बातें लिखी हैं, वशीकरण, काम भोग वगैरहका वर्णन है उनका सुनना और दूसरेके दोषकी चर्चा वार्ता सुनना यह दुःश्रुति नामका अनर्थ दण्ड है। दुःका अर्थ है बुरी बात, श्रुतका अर्थ है सुनना। विषय कषाय वर्द्धक रागमोह बढ़ावनहार वार्तावोंको सुनना दुःश्रुति अनर्थदण्ड है। जिन शास्त्रोंमें मिथ्यात्वकी चर्चाहो, काम भोगका वर्णनहो, स्त्री पुरुष विषयक वार्ताओंका वर्णन हो या उनका नग्न चित्रणहो, जिनके देखने सुननेसे मनमें विकार पैदा होता है वे सब अनर्थ दण्ड कहलाते हैं। और सिनेमा देखना, गंदे-गंदे गायन सुनना ये सब भी अनर्थदण्ड कहलाते हैं। इनका त्याग व्रती श्रावकके रहता है। इस प्रकार अनर्थदण्डोंका त्याग होना दूसरा गुणव्रत है, जिसका नाम है अनर्थ दण्ड व्रत।

(७) भोगोपभोग परिमाणव्रत नामक तृतीय गुणव्रत—अब भोगोपभोग परिमाण नामका गुणव्रत कहते हैं। भोजनपान वस्त्रादिकका परिमाण करना, उससे अधिक इनका सेवन न करना सो भोगोपभोग परिमाण है। इनका परिमाण अपनी शक्तिके अनुसार मनुष्य रखते हैं, भोजन आदिकके मर्यादाकी संख्या रखते हैं, आज इतनी बार भोजन करूंगा आदिक। तो उनका परिमाण बनानासो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भोगोपभोग नामका गुणव्रत है। यहां भोग और उपभोगदो शब्द दिए गए हैं, जिसमें भोगका अर्थ है वह वस्तु जिसका एक बार सेवन किया जायतो फिर आगे सेवनके योग्य न रहे। जैसे जो भोजन खाया है वह पुन: खाने लायक नहीं रहता। जो इष्ट तेल लगाया है शरीरमें वह यदि कुछ अधिक भी होतो उस सबको पोंछ कर कोई नहीं लगाता। तोजो बारबार भोगनेमें आयेंवे उपभोग कहलाते हैं जैसे वस्त्र आदिक उनका परिमाण करना यह तीसरा गुण व्रत हुआ।

(८) **सामायिकनामक प्रथम शिक्षाव्रत व सामायिक योग्य स्थान व आसन**—अब शिक्षाव्रतमें सामायिक नामके प्रथम शिक्षाव्रतका स्वरूप कहते हैं। सामायिक कहते हैं समता परिणाम रखनेको। गृहस्थ निरन्तर समतापरिणाम नहीं रख सकता। अथवा समता परिणाम रखना कठिनहो रहा। कभी कुछहो पाता है तो समताका अभ्यास करनेके लिए क्षेत्र काल आसन आदिक बातोंको सही समझें कि किस क्षेत्रमें बैठकर सामायिक करना, किस आसनसे सामायिक करना, किस समयमें सामायिक करना। कैसे मन, वचन, कायको शुद्ध रखना आदिक बातें जानकर अपने मन, वचन, कायकी शुद्धि करनासो सामायिक नामका शिक्षा व्रत है। कैसा स्थान होना चाहिए जहां सामायिक की शुद्धिहो? तो इतनातो स्थूल निर्णय है कि कुछ एकान्त स्थान होना चाहिए, जहां वार्तालापहो रहा हो, स्वयं भी कुछ संकेतसे करदे ऐसे स्थानपर सामायिक शुद्ध नहीं होती है। कर्कश शब्द न होना चाहिए, वह स्थान सामायिकके लिए प्रशंसनीय है, बहुत जनोंका आवागमन भी जहां न हो, वह स्थान सामायिकके योग्य है। जहां मच्छर आदिकका प्रकोप न हो वह सामायिकके योग्य स्थान है। ऐसा सामायिक करने वाला पुरुष स्थानका निर्णय रखता है।

सामायिकके समय—समयमें तीन समय सामायिकके बताये गए हैं—सुबह, दोपहर और सायंकाल। इन तीन समयोंमें उत्कृष्ट यथा ६-६ घड़ी काल बताया गया है सामायिक करनेका। सो विनयपूर्वक सामायिकमें आदरभाव रखते हुए सामायिक करना चाहिए। जहां ६ घड़ीका समय बताया है उसका अर्थ यह है कि सूर्योदयसे पहले तीन घड़ी और सूर्योदयके बाद तीन घड़ी, यह समय है सुबहकी सामायिकका। इसी प्रकार ठीक दोपहरसे तीन घड़ी पहले और ३ घड़ी बाद यह दोपहरके सामायिक का काल है, इसी प्रकार सूर्यास्तसे तीन घड़ी पहले और तीन घड़ी बादका ऐसा ६ घड़ी सामायिक करनेका समय है। सामायिकके कालमें सामायिकमें विनयभाव रखते हुए सामायिक करना ऐसा उत्कृष्ट विनय वाला गणधर देवने सामायिकका स्वरूप कहा है। विनयका अर्थ हैजो विशेष रूपसे ले जाय। अपने आपके गुणोंमें आदर होना यह वास्तविक विनय है ऐसा विनययुक्त महापुरुषोंने सामायिकका काल बताया है।

सामायिकमें आत्मस्वरूपका चिन्तन—सामायिकके योग्य आसन भी होना चाहिए। वह आसन पर्यङ्क आसन है अथवा कायोत्सर्ग है। ऐसे आसनोंमें ध्यान धरना। ऐसे आसनको लगाकर सामायिकके काल प्रमाण तक इन्द्रिय व्यापारसे जुदा होना चाहिए, क्योंकि धर्म नाम है आरम्भ परिग्रहसे रहित जीवन बिताते हुए अपने अविकार ज्ञानस्वभावसे उपादेय बुद्धि रखना। तो भले प्रकार आसन लगाकर समयका परिमाण करके इन्द्रियके व्यापारसे रहित होकर समता परिणामका आलम्बन करना। पर्यङ्क आसन मांडकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

या कायोत्सर्गसे खड़े होकर इन्द्रिय व्यापारको तजकरजो समता परिणाम रखनेका अभ्यास करता है वह अपने ज्ञानस्वभावको विकासकी ओर ही ले जाता है। यह सामायिक शिक्षा व्रतका नियम रखने वाला जिन वचनोंमें एकाग्रतासे श्रद्धालु है। सामायिकमें अपने शरीरका सम्वरण रहता है, अपनी ओर झुका हुआ रहता है। सो बारबार अंजुलि करके जो कि श्रद्धाका विशेष गुण है अपने स्वरूपमें लीन होकर आत्मस्वरूपका विचार करे। यह सामायिक शिक्षा व्रती क्षेत्रका परिमाणले लेता। क्षेत्र परिमाण में अवधि है अपने शरीर प्रमाणकी। कदाचित खड़े हुए सामायिक करते में ऐसी निद्रा आये या कुछ बेसुधीहो जाय और कदाचित वह एक निज देह प्रमाण स्थानमें हीतो गिरा। तो कभी ऐसी सम्भावनाकी भी बातहोतो भी अपने देह प्रमाण जगहसे आगे व्यापार न करना चाहिए। अर्थात् कोई चेष्टा न करे, ऐसी द्रव्य, क्षेत्र काल, आसनकी मर्यादा रखकर अंतस्तत्त्वका जो ध्यान करते हैं वे पुरुष सामायिक व्रतको सफलतासे प्राप्त करते हैं। सामायिक शिक्षा व्रतमें प्रथम बार जमीन पर मस्तक झुकाकर पंचगुरुको प्रणाम किया जाता है। और वंदना करनेकी मुद्रामें अंजुलीको आवर्तसे घुमाकर चारों दिशाओंमें चार प्रणामोंको करता है और मन, वचन, कायकी शुद्धिपूर्वक आत्मध्यानमें लगता है। तो ऐसा प्रतिदिन तीन समय सामायिक करनेका संकल्प और यत्न इस व्रती श्रावकके होता है।

सामायिकका निरुक्त्यर्थ—सामायिक शब्द समयसे बना है। समय नाम है आत्माका। समयमें **जो होवे** अर्थात् आत्मामें जो होवे उस भावको सामायिक कहते हैं अथवा समयमें सम् और अय् ये दो शब्द पड़े हैं, जिनका अर्थ है कि भले प्रकारसे एक रूपसे गमन करना सो समय है, याने आत्मा अपने अभेद रूपसे परिणमे, ऐसी वृत्तिको सामायिक कहते हैं। जहां आत्माकी एकरूपता बने अर्थात् रागद्वेषकी दुविधता न बने ऐसे भावको सामायिक कहते हैं। अथवा आत्माको एक रूप करना जिसका प्रयोजन है वह सामायिक है। इस छंदमें सामायिक करने वाला पुरुष जाप भी जपेगा, स्तुति भी करेगा, बारह भावनायें भी भायेगा, कभी आत्मतत्त्वको निरखनेका अभ्यास भी रखेगा. पर ये सब अपने आत्माको अभेदरूप करनेके प्रयोजनसे हैं। अथवा सामायिक का अर्थ है सर्व प्राणियाम समताभाव रखना। दव वंदना करते समय संक्लेशरहित मनसे समस्त प्राणियोंमें साम्यभाव रखना सामायिक है। सभी प्राणी मेरे स्वरूपके ही समान हैं, ऐसा निरखकर समता भाव रखना, जिससे कि किसी प्राणी के प्रति रागद्वेषकी वृत्ति न जगे, उसे सामायिक कहते हैं।

सामायिकमें ज्ञातव्य प्रयोग—सामायिक करनेके लिए कुछ बातें जानना आवश्यक है। जिन ज्ञातव्य बातोंमें तीन बातोंका वर्णन किया। (१) एकतो सामायिक कैसे स्थानपर की जानी चाहिए? इस सम्बंधमें बताया गया कि जहां कोलाहलके शब्द न हों, लोगों की भीड़भाड़ न हो, डांस मच्छर आदिक न हों, ऐसे क्षेत्रमें सामायिक करना योग्य है, **क्योंकि** ऐसे क्षेत्रमें चित्तको क्षोभ नहो ऐसी स्थिति बनती है। (२) दूसरी सामायिक किस समय करना चाहिए? सामायिकके तीन काल कहे गए हैं—प्रातः, मध्याह्न और सायं। (३) तीसरी बात बतायी है कि सामायिकके लिए किस प्रकारसे बैठना चाहिए? तो इसके उत्तरमें बताया गया है कि जो आसन ध्यान करनेमें साधन हों उन आसनोंसे बैठना। उन आसनोंमें दो आसन प्रसिद्ध और उपयोगी हैं (१) एक तो पद्मासन और (२) दूसरा कायोत्सर्गासन।

Version 1

इन आसनोंमें तारीफ यह है कि हाथ या पैरके तल भी अपने शरीरको या अन्यको नहीं छू रहे हैं। चित्तका क्षोभ हाथके तल अथवा पैरके तल भागसे किसी वस्तुको छूनेसे होता है। तो यह आसन इसी मुद्राका है कि तल भागसे किसीका स्पर्श नहींहो रहा।

सामायिकमें तन्मय होनेके अभिलाषियोंका कर्त्तव्य—उक्त तीन बातोंको बताकर अब चौथी बात यह बतायी जा रही है कि सामायिकमें तन्मय कैसे हुआ जाता है? सामायिक करने वाले कल्याणार्थीको प्रथमतो समस्त पापपूर्ण व्यापारका त्याग करना चाहिए।कोई पुरुष अन्यायकी आजीविका करे, अनेक लोगोंको धोखा देकर सताकर परिग्रह संचय करनेकी इच्छा रखे और ऐसाही प्रयोग करेतो उसके चित्तसे शल्य नहीं जा सकता। और जब तक निशल्यता नहीं होती तब तक समता परिणाम नहीं बनता। तो आत्मामें तन्मयता चाहने वाले पुरुष प्रथमतो अन्यायपूर्ण कार्योंको छोड़ें, फिर किसी एकान्त स्थानमें चैत्यालय गुफा, खाली मकान आदिकमें सामायिकका, समता परिणाम बर्तनेका पौरुष करें, वहां क्षेत्रकी मर्यादा कर लें कि मैं इतने क्षेत्रमें ठहरूंगा, फिर पद्मासन या कायोत्सर्ग आसन बनाये वहां कालकी मर्यादा करलें, मैं इतने काल तक सामायिक करूंगा। सामायिक योग्य स्थितिमें अपनेको रखकर इन्द्रिय व्यापारको रोक दें याने स्पर्शन इन्द्रियसे किसी चीजका स्पर्श न करें, रसना इन्द्रियसे किसी वस्तुका स्वाद न लें, गंध न लें, देखें नहीं, सुनें नहीं और मनको यहां वहां चलायें नहीं, जिनेन्द्र प्रभुने जो तत्त्व बताया है उसी तत्त्वके स्वरूपका चिन्तन करें अन्त: सहज अविकार स्वरूपके निरखनेमें उपयोग लगायेंतो ऐसी स्थिति होने में यह मन विकल्पको छोड़ देगा और आत्मस्वरूपमें तन्मय होनेका अवकाश मिलेगा। ५वां अभ्यास मनको निर्मल रखनेका है। जब किसी वस्तुको यह पुरुष इष्ट या अनिष्ट समझता है तब उसके मनमें निर्मलता नहीं रह पाती। सो सर्व पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप जानकर रागद्वेषसे रहित होकर मनको निर्मल बनायें। छठी बात यह कि अपने वचनको निर्मल बनायें, धर्मयुक्त वचन ही निकले और किसीके दिलको कष्ट न पहुंचे ऐसे ही वचन निकलें। कोई कायसे चेष्टा संकेत आदिक न करें और अपने स्वरूपमें उपयोग जाय इसके लिए कायकी स्थिरता बनायेंतो ऐसे उपायोंसे यह आत्मा अपने स्वरूपके दर्शनमें तन्मयहो जाता है।

(१०) प्रोषधोपवास नामक द्वितीय शिक्षाव्रतका निर्देशन—अब शिक्षाव्रतमें प्रोषधोपवास नामक दूसरे शिक्षा व्रतका स्वरूप कहते हैं। दूसरा शिक्षा व्रत है प्रोषधोपवास। पर्वके दिनोंमें उपवास करना अथवा एकाशन करना, नीरस आहार लेना और उन समयोंमें धर्मध्यानकी विशेषता करना यह प्रोषधोपवास है। आहारका त्याग किसलिए किया? इसलिए किया कि इन विकल्पोंसे छूटकर मैं सतत् आत्मस्वरूपकी आराधनामें रहूं, तो ऐसे लक्ष्य वाले पुरुष उपवासके दिन स्नानका त्याग रखते हैं। स्नानसे क्या प्रयोजन? मुनियोंकी शिक्षा पानेके लिए प्रोषधोपवास लिया है। उपवासके दिन विलेपन न करें। शरीरमें किसी चीजका विलेपन करना यह उपवासमें योग्य नहीं है, क्योंकि इसमें चित्तको क्षोभ ही रहता है। आभूषण आदिक पहिनना, स्त्रीसम्बंध रखना, गंधकुटी आदिक लेना ये सब राग बढ़ाने वाली घटनायें हैं। प्रोषधोपवासका व्रत रखने वाले पुरुष इन सब संस्कारोंको छोड़ते हैं, उनका आभूषण वैराग्य ही है।

सो ऐसे सात्त्विक व्रतको दोनों ही पर्वोंमें यह जीव उपवास करता है। इस हीको प्रोषध नामका शिक्षा व्रत कहते हैं।

(११) अतिथि संविभाग नामक तृतीय शिक्षाव्रतका निर्देश—अब तीसरा शिक्षा व्रत है अतिथिसम्विभाग। अतिथि कहते हैं साधु संतजनोंको, जिनके जाने-आने रहनेकी कोई तिथि नहीं है। जब मन हुआ आये, मन हुआ चले गए, ऐसे तिथि रहित महापुरुषोंको अतिथि कहते हैं। और अतिथियोंके लिए जो अपने भोजन आदिकमें सम्विभाग किया जाय और अतिथियोंको आहार आदिक वैयावृत्य किया जायतो यह सब अतिथि सम्विभाग कहलाता है। पात्र तीन प्रकारके होते हैं। उत्तम पात्र हैं मुनि, मध्यम पात्र हैं श्रावक और जघन्य पात्र हैं सम्यग्दृष्टि। इन तीन प्रकारके पात्रोंको आहार, शास्त्र, औषधि, अभयदान करनासो अतिथि सम्विभाग है।

अतिथि संविभागव्रती दातारके सप्तगुण—साधु संतोंको आहार कराने वाले श्रावक श्रद्धा आदिक ७ गुणोंसे युक्त होते हैं। मैं बड़ा पुण्यवान हूं। आज मैंने एक वीतराग पात्र पाया है, अर्थात् जिसके रागद्वेष विशेष नहीं हैं, व्यक्त नहीं हैं, ऐसे पात्रको पाया है, ऐसा निरखकर अपने अतरंगमें उमंग और श्रद्धा रखना यह श्रावकका प्रथम गुण है। दूसरा गुण है पात्रके समीप बैठकर उनकी भक्ति करना। तन, मन, धन, वचनसे उनकी आवश्यक सेवाओंमें रहना। दातारमें तीसरा गुण है निर्लोभता। इस श्रावकके मनमें किसी भी वस्तुका लोभ नहीं है। इस वस्तुसे मेरा काम है इसलिए यह न दूं और यह मुझे आवश्यक विशेष नहीं है इसे दूं, इस प्रकारका भाव दातार श्रावकमें नहीं होता। श्रावकका चौथा गुण है दया। घरमें चींटी वगैरह देखकर सावधानीसे काम करता है ऐसा दातार दयालु है। चौथा गुण है शक्ति। पात्रकी सेवामें कितनाही धन व्ययहो, उसमें असमर्थता न जाहिर करना, कायर न बनना यह उसका शक्ति नामक गुण है। छठवां गुण है क्षमा। स्त्री पुत्र वगैरह कितनेही अपराध करलें फिर भी दानके समय उनपर क्रुद्ध न होना यह दातारका क्षमा गुण है। ७वां गुण है ज्ञान। यह पात्र योग्य है, यह योग्य नहीं है इस प्रकारका विवेक और ज्ञान श्रावकके रहता है। सो ऐसे ७ गुणोंसे सहित श्रावक श्रेष्ठ दाता कहलाता है। सो यह दाता योग्य पात्रको भक्ति पूर्वक आहारदान, अभय दान, औषधि दान और शास्त्रदान करता है। अतिथि सम्विभाग व्रतधारी साधुजनोंके आहार करानेकी सर्वविधि जानता है।

दानकी नव विधियां—साधुसंतोंको आहार कराने वाले श्रावकके द्वारा दानकी ९ विधियां होती हैं। प्रथम है प्रतिग्रह। भक्ति पूर्वक सद्वचन बोलते हुए साधुको बुलाना इस प्रतिग्रहमें यह श्रावक अपने घरके द्वार पर पात्रको देखकर या कुछ अन्य जगह खोजकर भक्ति पूर्वक लाकर नमोस्तु नमोस्तु तिष्ठ-तिष्ठ कहकर उनका प्रतिग्रह करता है, फिर दूसरी विधिमें वह अपने घरले जाकर ऊंचे आसन पर बैठाता है। तीसरी विधिमें साधुके पैर धोता है, चौथी विधिमें अक्षत, फल, नैवेद्य आदिकसे पात्रकी पूजा करता है। फिर चरणोंके समीप झुककर नमस्कार करता है। श्रावकके मनकी शुद्धि, वचनकी शुद्धि और कायकी शुद्धि रहती है। सब ओरसे अपनी काय कषायको संकोच कर यह श्रावक शुद्धि पूर्वक साधु संतोंको आहार देता है। ऐसे दाताके ७ गुण होते हैं। जिनके कारण यह पुण्य उपार्जन करने वाली विधियों सहित चार प्रकारका पात्रको दान देता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दानका महत्त्व—अब आहार आदिक दानकी महिमा बतलाते हैं। दान चार प्रकारका होता है। (१) आहारदान (२) औषधिदान (३) ज्ञानदान और (४) अभयदान। जब जिस दानकी वृत्तिमें चले तब उसकी महिमा दिखती है। आहारदान करने पर तीन दानहो ही जाते हैं। जिस साधुको आहार दियातो उसमें इतनी सामर्थ्यतो आयी कि वह स्वाध्याय आदिक कर्मोंको निर्विघ्न करे। वह आहार भी एक औषधि है, क्षुधा एक तीव्र रोग है, उस रोगकी शान्ति हुई तो यह औषधिदान भी बन गया। और आहार आदिक देनेसे मुनिको अभयकी प्राप्ति हुई। वह भयरहित होकर धर्मसाधनामें लगता है। औषधिदान देनेसे रोग शान्तहो जाया करते हैं, उससे संत जनोंकी आत्मस्वरूपकी सिद्धिमें उमंग रहती है। अभयदान करनेसे जब साधकको भय न रहातो अपने आपमें अपने उपयोगको जोड़ना सरलहो जाता है। शास्त्रदानकी तो बड़ी ही महिमा है। ज्ञान और शास्त्रसे जो अपना लगाव रखता है वह कभी केवल ज्ञानको पाले, ऐसा बीचमें विकास बना हुआ है। शास्त्रदानका फल है केवल ज्ञानलाभ व निर्वाण लाभ। ऐसा यह श्रावक सद्गुण भावना सहित चार दानोंमें अपना प्रवर्तन करता है। उसे न इस लोकमें कोई इच्छा है दान देकर, न परलोकमें कोई इच्छा है। यह श्रावकतो भक्तिसे रत्नत्रयधारियोंका वैयावृत्य करता है। जो पुरुष इहलोक और परलोककी इच्छा न रखता हुआ भक्तिपूर्वक दान करता है वह श्रावक मानों समस्त संघको रत्नत्रय धारणमें स्थापित करता है। भक्तिपूर्वक किसी भी दिन अल्प दिया हुआ दान इन्द्रादिक पदोंको प्राप्त कराता हुआ परम्परया आत्माको आत्मामें मग्न कराकर निर्वाणको प्राप्त कराता है, इस प्रकार पात्रविशेषोंकी वैयावृत्ति करना यह तीसरा शिक्षाव्रत है।

(१२) **चतुर्थ शिक्षाव्रत**—अब चतुर्थ शिक्षाव्रतका स्वरूप कहते हैं। चौथे शिक्षाव्रतका नाम है किसी ग्रन्थमें सल्लेखना और किसी ग्रन्थमें देशव्रत। जो सातों दिशाओंकी मर्यादाकी हुई थी उसमेंसे कुछ अवधि लेकर कम मर्यादा करना, उससे बाहर न आना-जाना यह देशव्रत है। और सल्लेखनाको चौथा शिक्षाव्रत कहते हैं। तो सल्लेखनाके अभ्यासमें पहलेसे ही काय और कषायका सल्लेखना भाव रहता है। अथवा जीवके आवीचिमरणतो सतत् चलता रहता है। सो प्रति समयमें अपनी सावधानी रखना, विषय कषायकी इच्छा न जगे ऐसी सल्लेखना प्रतिदिन निभती रहती है। तो कहीं सल्लेखना बताया, कहीं १२वें व्रतमें देशव्रत बताया। और सल्लेखनातो अन्त समयमें विशेषतयाकी ही जायगी। यह देशावकाशिक व्रत वाले इन्द्रियके विषयोंके भोगोंका परिमाण घटाता है। जब यह विषयोंसे विरक्त होगा, मनके विषयसे भी विरक्त होगा तबही यह देशावकाशिक व्रतमें बढ़ सकता है। किसी किसी ग्रन्थमें कहीं कहीं शिक्षा व्रतका अन्तिम भेद सल्लेखना कहा है। जहां सल्लेखना नहीं कहा बारह व्रतोंमें वहां बारह व्रत पालन करने वालेको अन्तमें सल्लेखनाका उपदेश किया है। सल्लेखना मरणकाल आने परकी जाती है। सल्लेखनाका अर्थ है सत्लेखना, भले प्रकारसे क्षीण करना। शरीर और कषायोंको क्षीण करनेको सल्लेखना कहते हैं। शरीरको क्षीण करना बाह्य सल्लेखना है और कषायको क्षीण करना यह अन्तरंग सल्लेखना है। यह व्रती जब किसी कठिन उपसर्ग वृद्धता रोगके आनेपर मरणकाल निश्चित समझ लेता है तब यह आहारादिका त्याग कर बाह्य सल्लेखना करता है। अन्तरङ्ग सल्लेखनातो जीवनकालमें भी करना कर्त्तव्य है और वैसे आवीचिमरणतो प्रतिसमयहो रहा है। जो आयु निकली

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वह फिर वापिस नहीं आती। इसी प्रकार प्रत्येक समय आयुका क्षयहो रहा है, सो प्रति समय कषायका सल्लेखन करना आवश्यक है। सल्लेखना व्रतधारी सर्व जीवोंको क्षमा करता है, जो किसीका कुछ हर लियाहो वह उसको वापिस करता है। धर्म ध्यानमें अपना उपयोग लगाता है और ऐसा समाधिपूर्वक मरण करके यह जीव स्वर्गादिक उत्तम स्थानोंमें उत्पन्न होता है।

चतुरावर्त्तत्रितयश्चतु: प्रणाम: स्थितो यथाजात: ।
सामायिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥ १३९ ॥

अर्थ—जो चारों दिशाओं में क्रमश: तीन तीन आवर्त और चार प्रणाम, दो आसन करने वाला यथा जात मुनि की तरह स्थित तीनों योगों से शुद्ध व तीनों कालों में वन्दना करता है वह सामायिक नामक तृतीय प्रतिमाधारी है।

सामायिक प्रतिमा व सामायिककी विधि—देश संयत गुणस्थानमें तीसरा दर्जा अर्थात् प्रतिमा सामायिक प्रतिमा है। श्रावक सामायिककी विधिके अनुसार सामायिक करता है। सामायिककी विधि यह है कि पहले पूर्वदिशाकी ओर मुख करके खड़े होकर ९ बार णमोकार मंत्र पढ़े, पश्चात् ३ आवर्त करके अर्थात् दोनों हाथोंको जोड़कर तीन बार परिक्रमासी देकर यह उच्चारण करे मनमें कि ऊपर और नीचे जो चैत्यालय विराजमान हैं, जीव अजीव मंगल हैं उनको हमारा मन, वचन, कायसे नमस्कार हो। ऐसे घुटने टेक कर पञ्चांगसे नमस्कार करता हुआ कहे। फिर खड़े होकर उसी दिशामें ९ बार णमोकार मंत्र पढ़कर आवर्त करता हुआ ऐसा कह कर नमस्कार करे कि पूर्व दिशामें जितने चैत्यचैत्यालय हैं, जीव और अजीव मंगल हों, गुरुराज आदिक विराजमान हों, उन सबको मन, वचन, कायसे नमस्कारहो। फिर दक्षिणकी ओर मुख करके ९ बार णमोकार मंत्र पढ़कर आवर्त करता हुआ "दक्षिण दिशामें विराजमान समस्त जीव अजीव मंगलोंको नमस्कार हो। ऐसा उच्चारण करता हुआ नमस्कार करे, फिर पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके खड़े होकर ९ बार णमोकार मंत्र पढ़कर पश्चिम दिशामें जितने जीव अजीव मंगल हैं उन सबको नमस्कारहो, ऐसा कहकर तीन आवर्त करता हुआ नमस्कार करे, फिर इसी तरह उत्तर दिशाकी ओर खड़े होकर ९ बार णमोकार मंत्र पढ़कर उत्तर दिशामें जीव अजीव मंगलोंको नमस्कारहो, ऐसा कहते हुए तीन आवर्त करके नमस्कार करे। फिर पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर मुख करके बैठ जाय आसनसे अथवा खड़ा रहे, अब किसी मंत्रका जाप करे, बारह भावना आदिका मनमें पाठ करे, वस्तुस्वरूपका विचार करे, वंदना स्तुति भी करे और कुछ समय सर्व विकल्पोंको छोड़कर ज्ञाताद्रष्टा रहनेका पौरुष करे। सामायिक की क्रिया व काल पूरा होने पर फिर पंच नमस्कार मंत्र पढ़कर नमस्कार करता हुआ विसर्जन करे। सामायिककी इस विधिमें चारों दिशावोंमें तीन-तीन आवर्त हैं, चार प्रणाम हैं और एक प्रारम्भका संकल्प प्रणाम है। सामायिकमें यह श्रावक बालकवत् निर्विकार सरल आत्महितका चिन्तन करता हुआ रहे। मन, वचन, कायको सिद्ध करे, ऐसी सामायिक प्रात:, मध्याह्न और सायंकालजो करता है वह श्रावक सामायिक प्रतिमाका धारक कहलाता है।

सामायिकमें मुख्य ध्यातव्य तत्त्व—सामायिकमें मुख्य ध्यान परमात्माका और सहजात्माका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता है। जो वीतराग सर्वज्ञ हुआ है वह आत्मा परमात्मा कहलाता है। जब तक शरीर सहित है तब तक वह अरहंत है, जब शरीर रहितहो जाता है तो वह सिद्ध भगवन्त होता है। सो अरहंत और सिद्धके आत्माके स्वरूपका ध्यान धरे तथा आत्माके सहज स्वरूपका ध्यान रखे ये दो ध्यान सामायिकमें मुख्य हैं। जाप जपनेके लिए अनेक प्रकारके मंत्र हैं। "ॐ" इतने एक अक्षरसे भी जाप कर सकेंगे, सिद्ध इस प्रकार दो अक्षरोंके पदका भी ध्यान धर सकेगा, अरहंत ऐसा जपकर चार अक्षरके मंत्रसे भी अपना ध्यान धराजा सकता है, ऐसे ही ५-६-१६-३५ आदि अक्षरों युक्त मंत्रोंको यह भक्ति पूर्वक जपता है। इन सब जापोंमें निर्दोष आत्माका ध्यान है। सामायिकमें ऐसी वैराग्य भावनासे वासित होना चाहिए कि इस समय उपसर्ग उपद्रव भी आयेतो मन विचलित न करे। उस समय कर्मोंके उदयका विचार करें। कर्मदो प्रकारके होते हैं—पुण्य और पाप। तो पुण्यके फलतो सुहावने रहते हैं, जिनके लिए दृष्टान्त दिए गए हैं, गुड़, खांड, शक्कर और अमृत। पाप प्रकृतियोंको उसका फल बुरा है, सो जितने भी दुःख होते हैं वे सब पापके उदयमें होते हैं। संसारके सुख यद्यपि पुण्यके उदयमें होते हैं फिर भी उस पुण्यसे क्या गुजारा चलेगाजो मिट जाने वाले हैं और फिर संसारमें जन्ममरण कराने वाले हैं। पाप पुण्य दोनोंसे रहितजो आत्माका सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप वृत्ति है वही आत्म कल्याण करनेमें समर्थ है। सामायिकमें इतना समता भाव होना चाहिए कि लाभ अलाभ शत्रु मित्र, संयोग वियोग, तृण कांचन ये एक समान उसकी दृष्टिमें रहें। अब श्रावककी चौथी प्रतिमा प्रोषध है, उस प्रोषध प्रतिमाका स्वरूप कहते हैं। प्रोषध व्रत द्वितीय प्रतिमामें भी कहा था, वही प्रोषध इस प्रतिमामें निरतिचार पाला जाता है—

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य।
प्रोषधनियमविधायी प्रणधिपरः प्रोषधानशनः ॥ १४० ॥

अर्थ—जो मास के चारों पर्व दिनों में अपनी शक्ति को न छिपाकर, शुभ ध्यान में रत हुआ एकाग्रता के साथ नियम से प्रोषधोपवास करता है वह प्रोषधोपवास नाम का प्रतिमाधारी श्रावक है।

अष्टमी चतुर्दशी पर्वकी शाश्वतता—इस छंदमें समन्तभद्राचार्यने प्रोषधोपवास प्रतिमाका स्वरूप कहा है। माहमें पर्वके चार दिन आते हैं प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीमें। रविव्रत आदिकजो भी व्रतके पर्व बताये गए हैं वे किसी कारण किसी दिनसे किसीने प्रारम्भ कराये। वे पर्व अनादिनिधन नहीं हैं, किन्तु अष्टाह्निका और अष्टमी चतुर्दशी ये पर्व अनादि अनन्त हैं। इन दोके सिवाय शेष सभी पर्व किसी कारणसे बने हैं। रक्षा बंधन, दीपावली और तीर्थंकरोंके कल्याणक आदिक पर्व घटनाके कारण हैं जिससे कि बने हैं। अष्टाह्निका पर्व अनादि निधन इस कारण हैं कि ८वें द्वीपमें चारों दिशावोंमें १३-१३ जिन मंदिर हैं, जिनकी रचना पूजा पाठोंमें भी बतायी जाती है। वहां भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषि, वैमानिक, चारों प्रकारके देव कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ के अन्तिम ८ दिनोंमें पूजा करने जाते हैं, वंदना करते हैं और चौबीसों घंटे वंदना होती रहती है। वहां रात दिनका भेद है नहीं, और प्रायः ६-६ घंटे एक-एक निकायके देव वहां वंदनपूजन किया करते हैं। तो अष्टाह्निका पर्व यह अनादिसे ही चला आया है, अनादिसे ही देव होते आये हैं और वे वहां जाकर पूजन वंदन किया करते हैं। किन्तु मनुष्योंकी शक्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है कि वे उस द्वीपमें जाकर पूजन वंदन कर सकें। सो मनुष्य यहीं अपनेही मंदिरोंमें वहांकी स्थापना करके, स्मरण कर पूजन किया करते हैं। अष्टमी चतुर्दशी पर्व भी अनादि निधन हैं, क्योंकि प्रतिमावोंमें इसी दिन प्रोषधोपवासकी विधि बतायी गई है। तो यों एक माहमें चार-चार पर्वके दिन आते हैं, सो उन दिनोंमें अपनी शक्ति न छिपाकर प्रोषधका नियम पालनजो करता है वह प्रोषधोपवास प्रतिमाका धारी है।

शक्त्यनुसार पालन होनेसे प्रोषधोपवासके तीन प्रकार—प्रोषधोपवासके तीन प्रकार हैं—(१) उत्तम (२) मध्यम और (३) जघन्य। उत्तम प्रोषधोपवासमें यह श्रावक सप्तमी और त्रयोदशीके दिन दोपहरके समय अर्थात् आहारोपरान्त जिनमंदिरमें जाकर सामायिक आदिक क्रियायें करके चारों प्रकारके आहारोंका त्याग कर उपवास ग्रहण करता है, यह त्याग रहेगा नवमी और पूर्णिमाके दोपहरके आरम्भ तक। इतने समय तक घरका धंधा काम काज आरम्भ छोड़कर धर्मध्यान ही करता है रात और दिन। तो प्रोषधप्रतिमाधारी धर्मध्यान पूर्वक रात बिताकर प्रातः काल उठकर सामायिक आदिक क्रियाकर्म करता है। शास्त्र स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा पूर्वक दिन व्यतीत करता है, इसी तरह रात भी व्यतीत करता है और नवमी व पूर्णमासीके सुबह पूजन विधान करके पात्रको पड़गाह कर किसी त्यागी व्रती साधुसंतको जो मिल सकें उन्हें आहार कराकर फिर आहार करता है तो यह उत्कृष्ट प्रोषध प्रतिमाके पालनका विधान है। जिसमें इतनी सामर्थ्य नहीं है वह अष्टमी और चतुर्दशीको प्रासुक जल भीले लेता है। और जो अधिक असमर्थ हो वह अष्टमी चतुर्दशीको कुछ रस छोड़कर एकाशन करता है पर इस प्रतिमामें करीब ४८ घंटे धर्म ध्यानपूर्वक रहनेका कर्त्तव्य बताया गया है।

प्रोषधपालनमें मुनिव्रत पालनका अभ्यास—प्रोषध करना कर्तव्य इसलिए बताया कि रोजजो धर्मध्यान करते रहते हैं उस धर्मध्यानमें कुछ विशेषता आनी चाहिए। सो प्रति सप्ताह अष्टमी चतुर्दशी पर्वके निकट धर्मध्यानको बढ़ाता है और मुनियोंके व्रतोंको पालनेकी शिक्षा लेता है। इसमें मुनिव्रत पालनेकी शिक्षादो प्रकार से मिलती है। प्रथमतो प्रोषध प्रतिमाधारी तीनों दिन सप्तमी, अष्टमी, नवमी तथा तेरस, चतुर्दशी, पूर्णिमा, ऐसे तीन दिन शामको जल नहीं लेता, एक बार ही जलपान करता। तो मुनि भी ऐसा ही किया करते हैं, तो एक शिक्षातो यह मिलती है, दूसरी शिक्षा धर्मध्यान और समता परिणाम अधिक समय तक रखे, यह मिलती है। आत्मस्वरूपकी धुन रखने वाला व्रती श्रावक उमंग पूर्वक सप्ताहमें इन पर्वके दिनोंमें अपना धर्मध्यान बढ़ाता है। इस प्रोषधके फलमें बहुत भवोंके संचित कर्मभी लीला मात्रमें नष्ट हो जाते हैं। प्रोषध प्रतिमाधारी प्रोषधके समयमें आरम्भ से विरक्त रहता है। जो पुरुष उपवासतो धारण करले परन्तु मोहवश आरम्भको करेतो उसका वह उपवास केवल शरीरके सोखनेके लिए ही है, उससे लेशमात्र कर्म नहीं झड़ते। प्रोषधमें प्र उपसर्ग है और औषध शब्द लगा है। संधि होने पर गुणरूप आदेश होता है। इस प्रोषधका अर्थ है प्रकृष्ट औषध याने औषधिके समान अल्प आहार करना। आहार औषधिको विशेष समझता हुआ आहार करे। यह श्रावक इन्द्रिय विषयोंसे तो विरक्त रहता ही है, पर कर्मविपाकवश मुनिजनोंकी भांति उनका त्याग नहीं कर पाता। तो वह पर्वके दिनोंमें प्रकृष्ट औषधिकी तरह आहार लेता हुआ इन समयोंमें विशेष धर्मध्यान करता है।

परमार्थ धर्मध्यान—धर्मध्यानमें उत्कृष्ट धर्मध्यान है यह कि निज सहज ज्ञानस्वरूपमें आत्मतत्त्वका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनुभव करे। जो जीव अपने सहज स्वरूपमें आत्मस्वरूपका अनुभव कर लेता है उसको जगतमें फिर कोई कष्ट नहीं रहता। समस्त परद्रव्योंको जब जान लियातो उन अन्य पदार्थोंका परिणमन कैसा हीहो, उसमें इष्ट अनिष्ट बुद्धि अथवा रागद्वेष नहीं जगता है। जीव अकेला ही है, कर्मवश होकर चारों गतियोंमें भ्रमण करता रहता है उन समस्त योनियोंमें एक यह मनुष्यभव ही उत्कृष्ट भव है कि जहां संयमका धारणहो सकता है। इसी भवमें एक अपने मौजकी लालसासे संयमसे अलग रहे और भीतरी संयमसे भी च्युत रहे। अटपट प्रवृत्तियां रहेंतो इस मनुष्य जीवनके पा लेनेसे फिर कोई लाभ नहीं रहता। इस कारण इस मनुष्यभवको एक बड़ा जिम्मेदारीका भव समझना चाहिए। किसी भी प्राणीके सम्बंधमें मेरा दुर्विचार न जगे। मुझसे जितनाहो सके, दूसरे प्राणियोंका उपकार, भलाईतो हो पर मेरी किसी भी चेष्टाके कारण दूसरेको कष्ट न पहुंचे। ऐसा शान्त परिणाम रहता है श्रावकका और सतत प्रतीति रहती है अमूर्त ज्ञानमात्र निजतत्त्वकी। मैं रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित हूं, अतएव बाह्य पुद्गलकी भांति मैं पकड़में नहीं आता हूं। आकाशकी तरह अमूर्त हूं, पर उपाधिका सम्बंध होनेसे आज विचित्र दशायेंहो रही हैं। जब मैं अपने स्वरूपकी सम्हाल करूं तो ये सब विडम्बनायें दूर हो जायेंगी और आत्मस्वभावकी भावनासे अलग रहूं तो ये संसारके दुःख बने रहेंगे, बढ़ते रहेंगे। इससे सर्व पदार्थोंको असार बेकार होनेसे निराला जानकर अपने आपके आत्मानुभवमें तृप्त रहा करें यह ही अपने आत्मापर वास्तविक दया कहलाती है। तत्त्वज्ञान करें, उसको अपनेमें प्रयोग रूपसे अनुभवें, सम्यग्दर्शन पायें और यथाशक्ति व्रत, संयम पालन करते हुए अपनेमें प्रसन्नताका अनुभव करें और अन्त समयमें आत्मसावधानी रखते हुए इस शरीरको छोड़ें, तो यह उपाय है शीघ्रही आत्म कल्याण पानेका, मोक्ष मार्ग पा लेनेका।

मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि।
नामानि योऽति सोऽयंसचित्तविरतो दयामूर्तिः॥ १४१॥

अर्थ—जो दयामूर्ति मूल, जड़, शाक, शाखा, गांठकन्द, फूल और बीज इन्हें कच्चे नहीं खाता वह सचित्त विरत नामक प्रतिमाधारी है।

पहिलेकी सब प्रतिमावोंके पालनके साथ सचित्त त्याग प्रतिमाका पालन—इस छंदमें सचित त्याग नामकी पंचम प्रतिमाका स्वरूप कहा है। जो पुरुष अपने आपके स्वरूपका श्रद्धान करके देव, शास्त्र, गुरुकी आस्थासे अपने आपमें अपने अनुभवको दृढ़ बनाकर आगे गमन करता है वह श्रावक क्रमशः कैसे कैसे त्याग बढ़ाता है और किस तरह अपने आपमें लीन होनेका मार्ग बनाता है वह सब इन प्रतिमावोंमें दिखायाजा रहा है। सचित्त त्यागी श्रावकने बारह व्रतोंका पालन किया, ३ बार नियमित निरतिचार सामायिक किया और अष्टमी चतुर्दशीके दिनोंमें एकाशन उपवास करके बहुत समय चैत्यालयमें या एकान्तमें बैठकर धर्म साधनाके लिए दिया, और वह सब बराबर करता चला आ रहा है। अब वही यहां सचित्त पदार्थोंके भक्षणका त्याग कर रहा है। जितने भी सचित्त पदार्थ फल, शाक, कंदफूल बीज हैं उन सबका त्याग करता है उनको नहीं खाता। कुछतो ऐसे अभक्ष्य सचित्त हैं कि जिन्हें पहलेसे ही नहीं खा रहा था और कुछजो बच रहे हैं सचित्त, उनका भी यहां त्याग कर चुका है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वृक्ष या बेलसे तोड़ लेने पर भी अपक्व फलोंमें सचित्तता—सचित्त फल, शाक जिन्हें कि तोड़कर या बाजारसे खरीदकर लाते हैं तो वे फल और शाक अचित्त नहीं हैं, जैसे वृक्षमें बेल लगी थी। उस बेलसे वृक्षसे तोड़ लिया गया फलतो उसमें वह एक जीवतो नहीं है, पर प्रत्येक फल फूलमें अलगसे असंख्यात वनस्पति जीव रहते हैं। जैसे आपके शरीरका मालिक एक जीव है पर इस शरीरमेंतो अनेक जीव पड़े हैं, अंगुली कट जाय तो कटी हुई अंगुलीमें वह एक जीवतो न रहा। वहतो इस बड़े शरीरमें ही है, पर अंगुलीमें खुदमें जीव अनेक रहते हैं। ऐसेही वृक्षमें आम संतरा आदिक फल लगे हैं, बेलमें लौकी तुरई आदिक फल लगे हुए हैं, उनको तोड़ा गयातो वह वृक्ष वाला जीवतो फलमें नहीं आया, किन्तु फलमें खुद अनेक जीव रहते हैं। सो जब तक ये पके नहीं, गरम न हों, जो प्रासुक विधि है उससे प्रासुक न होंतो ये सचित्त कहलाते हैं। सचित्त पत्र, फल, छाल मूल पत्ते बीज, इनकोजो ज्ञानी जीव नहीं भक्षण करता खानेका त्याग करता है उसे हीतो सचित्त त्यागी कहते हैं। यहां पानी गर्म करता है, फल शाक आदिको बिमार कर रसोई बनाता है यह ५वीं प्रतिमा वाला, लेकिन मुखसे कच्ची चीज नहीं खाता, यद्यपि हाथसे बनाया सचित चीज उसमें भी एकेन्द्रिय जीवकी हिंसातो हुई, पर मुखसे एकेन्द्रियकी हिंसा करनेमें विशेष आसक्ति सिद्ध होती है। तो यह सचित्त त्यागी श्रावक सचित्त पदार्थोंका भक्षण नहीं करता।

स्वपर दयामूर्ति श्रावकके सचित्त त्याग की प्रतिष्ठा—सचित्त त्यागी पुरुष सचित्त पदार्थोंको स्वयंतो भक्षण करते नहीं पर उसे ऐसा विवेक रखना चाहिए कि अन्य पुरुषोंको भी सचित्तका भक्षण न कराये। तोजो पुरुष सचित्त फल आदिकका त्याग करता है उसने इस जिह्वाके स्वादको जीत लिया। अनेक फल ऐसे होते हैं कि सचित्तमें स्वाद होता है और अचित्तमें स्वाद कम रह जाता है। जैसे सेव संतरा आदिक इन्हें गर्म कर लिया जायतो इनके रसमें बदलहो जाती है। तो जो सचित्तका त्याग करते हैं उन्होंने इस दुर्जेय जिह्वाको जीत लिया। कच्चे जलमें स्वाद विशेष होता है और वह कामपोषक होता है। गरम पानी हो गयातो उसका रस बदल गया। अब उसमें कामावेशकी शक्ति नहीं रहती। तो सचित्त त्याग करनेके दो प्रयोजन हैं। (१) एकतो एकेन्द्रिय जीवकी हिंसा टल जाय। (२) दूसरे कामोत्तेजक नहो ऐसे इन दो प्रयोजनोंसे यह दयामूर्ति सचित्त त्याग करता है और वह जिनेन्द्र भगवानकी आज्ञाका पालन करता है, सचित्त पदार्थोंको अचित्त करनेकी तरकीबें अनेक होती हैं। कुछ फल बिनारनेसे अचित्तहो जाते हैं, कुछ पकानेसे अचित्त होते हैं, कुछ सूखनेसे अचित्त होते हैं, तो ऐसे अचित्त फलोंका यह भक्षण करेगा, सचित्तका भक्षण नहीं करता। अब यह गृहस्थ श्रावक अपनी धर्मसाधनामें क्रमशः बढ़ रहा है। अब इसके बाद छठी प्रतिमाका वर्णन करते हैं।

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्वेष्वनुकम्पमामनाः॥ १४२॥

अर्थ—जो रात्रि में अन्न, पान, खाद्य, लेह्य, आदि पदार्थों को नहीं खाता वह जीवों पर दया करने वाला रात्रिभुक्त विरत नामका श्रावक है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा—जिसको प्राणियों पर दया आती है ऐसा पुरुष रात्रिमें बनाये हुए भोजनको नहीं खाता और दिनमें बनाये हुए भोजनको भी रात्रि में नहीं खाता। रात्रि भोजनका त्यागतो पहली प्रतिमासे ही था, पर यहां छठी प्रतिमामें रात्रि भोजन त्याग इसलिए बतायाहै कि अब यह स्वयं रात्रिको न खायगा और दूसरोंको भी न खिलायगा। छठी प्रतिमासे पहले यह गृहस्थ दूसरोंको कभी-कभी रात्रिमें खिला देता था अथवा रात्रिमें खिलानेका हुक्म दे देता था। अब छठी प्रतिमा धारण करने पर यह रात्रिमें खायगा नहीं, न दूसरोंको खिलायगा। न रात्रिको खाने खिलानेके लिए अनुमोदना करेगा। चार प्रकारके भोजन होते हैं (१) खाद्य (२) स्वाद्य (३) लेह्य और (४) पेय। जैसे जिससे प्रतिदिन पेट भरा जाता है दाल, भात, रोटी आदिक ये खाद्य कहलाते हैं, इनका भक्षण रात्रिको यह छठी प्रतिमाधारी न करता है, न कराता है, न करते हुएको भला मानता है। स्वाद्य लड्डू पेड़ा आदिकजो रोज-रोज नहीं खाये जाते, न इनसे पेट भरता, एक स्वादका ही प्रयोजन बनाते हैं। लेह्य पदार्थ वे हैं जो चाटे जाते हैं, रबड़ी, चटनी आदिक, और पेय पदार्थ वे हैं जो पीने योग्य होते हैं जैसे दूध, जल आदिक। तो ऐसे चार प्रकारके आहार होते हैं, इन्हें छठी प्रतिमा वाला न खायगा, न खाते हुएको भला मानेगा, क्योंकि रात्रिमें जीव जंतुवोंका गमन विशेषहो जाता है, सो रात्रिभोजन करनेसे उन जीवोंका विघातहो जाता है।

रात्रि भोजनसे स्व पर विघात—अनेक जगह रात्रिमें भोजन करनेसे बारातकी बारात रुग्ण हुई, अनेक लोग मरे और अनेक बेहोश हुए। जैसे रात्रिमें कड़ाही जल रही है, मानलो खीर बनाई गई और उसमें कोई छिपकली गिरकर पक गई, उस खीरको लोगोंने खा लिया, तो उसके खाते ही दस्त आना, बुखार आना शुरु हो गया, ये सब बातें होती हैं। तो रात्रि भोजन करना जैन शासनमें बिल्कुल निषिद्ध है। बच्चे, बड़े रात्रि भोजन त्याग निभाना चाहेंतो भली भांति निभेगा, पर स्वादका लोभ लगा है इसलिए ऐसा महसूस करते कि यहतो न चल सकेगा, रात्रिमें भोजन न करें या दूध आदिक न लेंतो चल न सकेगा, ऐसा अनुभव करते हैं, पर चल क्यों न सकेगा? आज पुण्यका उदय है, अनेक वैभव प्राप्त हुए हैंतो जैसा चाहे मन कर लें, किन्तु कषायभाव आनेसे पापका बंध तुरन्त होता रहता है, और उस पापके उदयमें फिर इसे दुःख भोगना पड़ता है।

रात्रि भोजन त्यागमें आत्मलाभ—जिसने रात्रि भोजनका त्याग कियासो मानलो कि एक वर्षमें ६ माहका उपवास साही हो गया। रात्रिमें तो कुछ न खायातो यह भी एक बहुत बड़ा सदाचार है तो जो श्रावक रात्रिमें चारों ही प्रकारके भोजनको नहीं ग्रहण करतातो वह रात्रिभर उपवासमें तो रहा ही आया, रात्रिमें कुछ भी करेगा सो एक वर्षके आधे दिन याने ६ माहतो उपवास किया, ऐसा समझलो। यद्यपि वह उपवास रूप नहीं है एक त्याग किए हुए है, वह आधा वर्षतो निकल गया भोजन न करनेमें। तो रात्रि भोजन त्याग करने वालेका रात्रिमें कूटना, पीसना, पानी भरना, झाड़ू बुहारी लगाना आदिक ये सब आरम्भ दूर हो जाते हैं। रात्रि भोजन त्यागी स्त्रियां भी होती हैं, ११ प्रतिमायें स्त्रियां भी धारण कर सकती हैं, पुरुष भी धारण करते हैं, तो एक प्रश्न आता है कि किसी महिलाके छोटा बच्चा होतो वह रात्रिको उसे दूध पिलायगी या नहीं? तो यदि न पिलायेतो यह बच्चे पर दया न रही अतएव छोटा शिशुतो दिन रातमें बीसो बार दूध पी लेता होगा। तो ऐसा महापुरुषोंने बताया है कि महिलाकी छठी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्रतिमाहो तो भी वह अपने बच्चेको दूध पिला सकती है और इसके अतिरिक्त दूसरेको न खिलायें, न स्वयं खायें, ऐसे बड़े कठोर नियंत्रणसे छठी प्रतिमाका आचरण होता है। अब सप्तम प्रतिमा ब्रह्माचर्य व्रतके सम्बंधमें कहते हैं।

मलबीजं मलयोनिं गलन्मल पूतिगंधिबीभत्सं।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः॥ १४३॥

अर्थ—जो श्रावक शरीर को मल से उत्पन्न होने वाला, मल का जनक, मल मूत्र को बहाने वाला, दुर्गन्धयुक्त, ग्लानि का उत्पादक देखता हुआ मैथुन से विरत होता है वह ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी कहलाता है।

ब्रह्माचर्य प्रतिमा—ब्रह्माचर्य के विरुद्ध व्यभिचारमें जो प्रवृत्ति करते हैं उनकी दृष्टि दूसरे देहपर ऐसी होती जैसे मानों वही सारभूत हो। सो यह शरीर कितना घिनावना और अपवित्र है कि मलकातो यह बीज है। जैसे बीज से अंकुर फूटता है ऐसे ही इस देहसे मल निकलता है और कितना मल निकलता? खून पीप आदिकतो सारे शरीरमें है ही, पसीना भी निकलता, हाड़, मांस, मज्जा भी सर्वत्र है। किन्तु मुखमें इतने मल हैं कि जितने सारे शरीरमें नहीं है। कह सकते हैं कि पेटमें अन्य अंगोंकी तरह मैल हैं और उसके अतिरिक्त दो मैल और अधिक हैं—टट्टी और पेशाब। मगर मुखमें तो बड़े ही मैलोंकी संख्या है। जैसे कफ निकलना, थूक आना, नाक बहना, आंख का कीचड़, कानका मैल आदिक कितने ही मैल भरे हैं इस मुखमें, मस्तकमें। तो जो अधिक गंदा है इस देहके अन्दर वह मुख है अधिक गंदा। इतनी गंदगी हाथमें कहां है? हाथमें खून है, मज्जा है, हड्डी है और मुखमें ये तो सब है ही मगर थूक, नाक, वगैरह अनेक मैल यहां पाये जाते हैं। फिर कैसा अनोखा राग है मोहियोंका कि शरीरमें सबसे अधिक प्रिय मुख लगता है इन मोही जीवोंको। तो शरीर का बीज मल है अर्थात् शरीर मल से उत्पन्न होता है और मलकी योनि है। इस शरीरसे मल निकलते हैं, निरन्तर मल झरते रहते हैं, अपवित्रता बनी रहती है, दुर्गन्ध भी है, बड़ा भयानक रूप है। यदि यह चाम ऊपर न होतातो कितना भयानक यह मनुष्य लगता। ऐसे वीभत्स बुरे देहमें जो राग नहीं करता वह ब्रह्मचारी कहलाता है। यह ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी समस्त स्त्री विषयक अभिलाषाको त्याग देता है। स्त्रीजन चार प्रकारकी होती हैं। (१) एक तो देवियां (२) दूसरी मानुषी महिला, औरतें (३) तीसरी तिर्यञ्चिनी कुतिया, बिल्ली, गाय, गधी आदिक और (४) चौथे प्रकारकी स्त्रियां हैं काठ पत्थर आदिककी, जिनको देखकर हृदय बिगड़े, प्रेमवासना उमड़े वे सब हेय हैं। सो इन सभी प्रकारकी स्त्रियोंमें मनसे, वचनसे, कायसे, कृतकारित अनुमोदनासे राग न करना चाहिए। यह ब्रह्मचारी न तो स्त्रीजनोंको मनसे, वचनसे, कायसे चाहता है, न कृतकारित अनुमोदनाका दोष लगाता है, स्त्री सम्बंधी अभिलाषाही नहीं करता, न दूसरोंको इस विषयमें प्रेरणा देता है। ऐसा यह पुरुष विकार भावोंसे दूर ब्रह्मचारी कहलाता है।

अठारह हजार प्रकारके कुशीलोंका त्याग करनेसे अठारह हजार शीलके प्रकारोंका पालन—शीलके १८ हजार भेद बताये गए हैं जिनका पूर्ण पालन तो ऊंचे गुणस्थानोंमें होता है फिर भी इनसे विरक्ति रखना सभी गृहस्थोंका कर्त्तव्य है। वे १८ हजार शील किस तरह होते? तो १८ हजार

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुशील हैं, जिनके त्यागको शील कहा करते हैं। ४ प्रकारकी तो स्त्री, देवी, मानुषी, तिर्यञ्चिनी और अचेतन काठ, शिल्पकारीकी तो इन चार प्रकारकी चेतन अचेतन स्त्रियोंको मन, वचन, कायसे सेवना सो ये ४×३ = १२ भेद हुए। अब इन १२ प्रकारोंको कृतकारित अनुमोदनासे गुणा करनेसे १२×३ = ३६ भेद हुए और ये ३६ ही पाप ५ इन्द्रियोंसे किए जा सकते हैं तो ये ३५×५ = १८० भेद हुए। अब इनको १० संस्कारोंसे दृढ़ करना इस प्रकार ये १८०×१० = १८०० भेद हुए। वे १० प्रकारके संस्कार क्या हैं जो आत्माके परिणामसे विचलित करते? (१) पहला है शरीरका संस्कार करना, (२) दूसरा है शृंङ्गार रस राग ऐब सहित सेवन करना ये सब दोष बताये जा रहे हैं। शरीरको जो सजाता हैतो समझिये कुछ इसके चित्तमें अभी कमी है, (३) तीसरा संस्कार हँसी क्रीड़ा करना, (४) चौथा संस्कार है संसर्गकी इच्छा करना, (५) पांचवां संस्कार है विषयोंका संकल्प करना, (६) छठा संस्कार है दूसरेके शरीरकी ओर ताकना, (७) सातवां संस्कार शरीरको सजाना, (८) आठवां संस्कार है कुछ देना, नवमा संस्कार है पहिले भोगे-भोगोंका स्मरण, दसवां संस्कार है मनमें भोगकी चिन्ता करना। इन १८०० को १० काम चेष्टावोंसे गुणा करना सो १८००० कुशील होते हैं। कुशीलमें काम सम्बन्धी १० चेष्टायें होने लगती हैं। जो पुरुष विवेक नहीं करता और यदवा तदवा भावका बिगाड़ करता रहता है उसकी १० चेष्टायें कौन होती हैं? तो पहली चेष्टा कामकी चिन्ताका होना है। जो प्रेमीजन हैं वे पासमें न हों तो उनके लिए दिल बना रहे, सो पहलेतो चिन्ता होती है, जिनको काम सताता है। फिर जिसको दिलमें बसाया उसके दर्शनकी इच्छा होती है। न मिल सके दर्शनतो बड़ी दर्द भरी आहें भरता है, फिर शरीरमें पीड़ा होती है; शरीरमें जलन होने लगती, और यह उस धुनमें खाने पीनेका भी त्याग कर देता, फिर मूर्च्छितहो जाता, फिर पागल साहो जाता और फिर जीवनका भी संदेहहो जाता है, वीर्यपात होने लगता है कामी अपनी शक्तिका भंग करता है। तो शील सम्बंधी दोष १८ हजार होते हैं, तो उन दोषोंका त्याग भी १८ हजार प्रकारका हुआ। जो पूर्ण ब्रह्मचारी है वह इन भेदोंको भी उल्लंघ देता है।

ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी श्रावकका विशुद्धभाव—ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने वाला पुरुष ही दयालु है, क्योंकि विभिन्न अंगोंमें अनेक सम्मूर्छन जीव रहते हैं। तो हिंसाका परिहार करने वाले उन सब साधुवोंका परित्याग किसलिए है? तो ब्रह्मचर्य प्रतिमामें कुशीलसे विरक्ति रहती है। कितने भी सुन्दर स्त्री पुरुषको निरखकर कोई मनमें विकार नहीं आता जिसके ब्रह्मचर्य प्रतिमा होती है वह सप्तम प्रतिमाधारी कहलाता है। ११ प्रतिमावोंमें ७वीं, ८वीं, ९वी ये तीन प्रतिमायें मध्यम प्रतिमायें कहलाती हैं। और इससे नीचे गुण स्थानोंमें जघन्य और उनसे ऊपर उत्कृष्ट स्थानोंमें उत्तम कहलाती हैं। ब्रह्मचर्यका सीधा अर्थ है—ब्रह्म मायने आत्मा उसमें चर्य अर्थात् रमण करना, पर जिससे इतना न बन सकेतो परमार्थ ब्रह्मचर्य पालन करनेका मूलतो बन जाना चाहिए। सो यह ब्रह्मचारीतो मन, वचन, काय, कृतकारित अनुमोदनासे विषयोंका परिहार करता है। लोकमें अनेक शूरवीर सुने गए, पर वास्तविक शूरता ब्रह्मचर्य प्रतिमा निभाने वालेकी है। सो आत्माका अविकार स्वरूप जानकर बाहरमें शरीरको अपवित्र निरखकर यह कुशीलसे विरक्त रहता है और अपने शील स्वभावमें उपयुक्त होता है।

जिस पुरुषने छहों द्रव्योंका स्वरूप जाना है, प्रत्येक द्रव्यका गुण पर्याय उसही में है, इस कारण

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसी द्रव्यसे किसी द्रव्यका कोई सम्बंध नहीं है। न कोई किसी अन्यका कर्ता है, यह बस रहस्य जिसको स्पष्टहो गया उस पुरुषको अब जगतके किसी पदार्थमें कुछ अभिलाषा नहीं रहती और आत्मकल्याणके लिए ही वह अग्रसर रहता है। इसका निर्णय है कि परमात्मदशासे पहलेकी सारी स्थितियां उसके लिए बेकार हैं। इन किन्हीं भी स्थितियोंमें मेरी पवित्रता नहीं, मेरेको शान्ति नहीं। व्यर्थका भ्रमभार लादकर जगतमें कष्ट पाता हूं। अब इसके किसी भी बाह्यपदार्थमें इच्छा न रही, संसार, शरीर, भोगोंसे विरक्त हुआ और बारह व्रतोंका अभ्यास करके समता परिणाम की दृढ़ता बनाकर प्रति सप्ताह ४८ घंटे विशेष धर्म ध्यानमें लगाकर दयावश सचित्त पदार्थोंको अब नहीं खाता, इनका त्याग कर देता है। और रात्रिके भोजनमेंतो प्रकट हिंसा है सो रात्रि भोजनतो करता ही नहीं, न कराता है, न रात्रि भोजन करने वालेकी अनुमोदना करता है। इन सब अभ्यासोंसे दृढ़ होकर इसके ब्रह्मचर्यकी बड़ी तीव्र भावना जगी है। और अब निज स्त्रीसे भी सम्बंधका त्याग करता है अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करता है।

ब्रह्मचारी की कुशीलके साधनोंसे दूर रहनेकी वृत्ति—ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी श्रावक अब यह घरमें रह रहा है। किन्तु निरतिचार ब्रह्मचर्य रहे इस भावनासे वह अपनी विवाही स्त्रीके कमरेमें भी नहीं सोता। पूर्वमेंजो भोग था उन भोगोंका यह स्मरण नहीं करता। जिससे कामवासना बढ़े ऐसे पुष्ट गरिष्ट पदार्थोंको वह नहीं खाता जिसकी आत्महितकी भावना प्रबल हुई है उसे अब स्वादसे अथवा शरीरके पोषणसे कुछ प्रयोजन नहीं रहा जब यह शरीर एक दिन छूटना ही है, यह श्मशानमें जलाया जायगा, प्रकट भिन्न है, मलको बहाने वाला है, उस शरीरसे भी क्या प्रेम रहे ज्ञानीका? ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी गरिष्ट पदार्थोंका भोजन नहीं करता। जो कामोद्दीपन करें राग बढ़ाये ऐसे वस्त्र आभरण नहीं पहिनता। बनावट सजावटसे वह दूर रहता है, शुद्धसात्विक वृत्तिसे वह रहता है। वह गृहस्थ घरमें रहता हुआ भी कितना पवित्र भावनाओंका पुरुष है। रागवर्द्धक गीत, नृत्य, वादित्र आदिकका भी अब वह संग नहीं बनाता। धार्मिक गीत, धार्मिक नृत्य, धार्मिक समारोहमें इनके बीच रहता हुआहो तो अपने सद्भावोंको ही बढ़ा लेता है, इस कारण वहतो रागमें शामिल नहीं है, वहतो धर्मके अनुरागमें शामिल है, पर जिनसे राग बढ़ता है ऐसे गीत नृत्यआदिकका भी सम्बंध तज देता है। पुष्पमाला पहिनना, सुगंधित फुलेल लगाना, विलेपन करना, श्रृंगारकी कथायें सुनना, कहना, हास्यकी कथायें कहना सुनना, उपन्यास पढ़ना, अश्लील चित्र देखना आदिक इनसेतो अत्यन्त दूर रहता है। और भी रागकारी वस्तुवें, जैसे ताम्बूल भक्षण, जिनसे शरीरके प्रति राग जगता है, ऐसी बातोंको वह त्याग देता है। एक परम ब्रह्मस्वरूपकी भावनामें बढ़-बढ़कर वह अपनेको इस योग्य बना लेता है कि उसे अब द्रव्य उपार्जन करनेका भाव नहीं रहता, तब इसके अष्टम प्रतिमा प्रकट होती है।

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥ १४४ ॥

Version 1

अर्थ—जो सेवा, खेती, व्यापार आदि आरम्भों से, जो जीव हिंसा के कारण हैं, विरक्त होता है—उन्हें त्याग देता है वह आरम्भ विरत नामक प्रतिमाधारी श्रावक है।

स्वपर प्राणविघातके कारणभूत होनेसे धनार्जनके आरम्भोंका त्याग—जो सेवा, खेती, व्यापार आदिक आरम्भोंसे निवृत्त होता है वह आरम्भ त्यागी श्रावक कहलाता है। इस आरम्भको क्यों त्यागता है? तो यह प्राणिबधके कारणभूत है। कितना ही बचावहो आजीविकाके उपायोंमें फिर भी कुछ न कुछ प्राणिवध सम्भव है। कोई सोचे कि नौकरी है या अन्य कुछ है जिसमें प्राणिवधका कार्य सम्भव नहीं है वह आरम्भ करे तो इसमें भी खुदका राग बढ़ता है, तो खुदमें घात चल रहा है—अब यह अपना भी वध नहीं सह सकता, दूसरेका वध भी नहीं सह सकता इसलिए दयालु होकर अपनी रक्षाके लिए प्राणियोंकी रक्षाके लिए यह समस्त आरम्भका त्याग कर देता है। घरमें रह रहा है परिग्रह भी पास रखे हुए है। केवल एक नई आजीविका अर्थार्जन नहीं कर रहा, पर जो पहले से संचित है उसेतो रखे हुए है, उसमें अपना गुजारा कर रहा है, तो यह बचता हुआ अब दूसरेका मुंह न ताकेगा। यह खुद आहार बना सकता है और कोई व्रती साधु संत मिलें तो उनको आहारदान करा सकता है। यहांतो प्राणिवधके कारणभूत उन षट् कर्मोंसे निवृत्त हुआहै जो आजीविकाके साधन हैं। यह आरम्भ त्यागी आरम्भ छोड़ते समय अपने घरके बड़े पुत्रादिकको बुलाकर अपना विचार बताता है और उस ही समय थोड़ा सबको विभाग करता है इनको इतना धन दिया, इनको इतना दिया, खुदके लिए इतना रख लिया और बाकीजो थोड़ा कुछ रखा है उसी अल्प धनसे दुःखियोंका, भूखोंका उपकार करता है, अपनी भी उदर पूर्ति करता है।

आरम्भ त्यागी श्रावकका प्रगतिशील आशय—आरम्भ त्यागी श्रावकको यह भय नहीं है किजो मैंने थोड़ा सा अपनी उदर पूर्तिके लिए रखा है, यदि यह निपट जायगातो क्या करेंगे? उसका एक ही निर्णय है कि अगर यह भी निपट जायतो आगे मैं प्रतिमाक्षेत्रमें बढूँगा, धर्मसाधनामें बढूँगा। चिन्ता उनको होती है जो धर्ममें बढ़नेकी उमंग नहीं रखते और अपने देहपर दृष्टि अधिक धरते। यह आरम्भ त्यागीजो कुछ थोड़ा अपने लिए रखा है उससे शरीरका साधन बनाया है। औषधि, भोजन, वस्त्र आदिक का साधन बनाया है। साधर्मीजनोंके दुःखोंके दूर करनेका साधन बनाया है वह अपने आरम्भका उपयोग पापारम्भमें नहीं करता। जो कुछ थोड़ा धन रखे है उसको यदि कोई चोर चुरा ले या कोई हर लेतो वह क्लेश नहीं मानता और उसे उत्पन्न करनेकी चेष्टा नहीं करता कि यदि मेरे ये १० हजार रुपये लुट गए हैं तो फिरसे मैं कमाऊं। ऐसा भाव नहीं रखता, किन्तु इस प्रसन्नताका अनुभव करता कि जो अवसर मुझे चाहिये था वह सहजही मिल गया। वह आगेकी प्रतिमावोंमें बढ़ता है और अपनेको धन्य मानता कि जो कुछ मैंने रखा था उसमें मैं रागीहो रहा था, वह भी छूट गया, ऐसा वह परिग्रहके छूटनेमें आनन्दका अनुभव करता है और परिग्रह त्याग प्रतिमा धारण करता है और यदि इस तरहसे परिग्रह न लुटेतो खुद भी परिग्रहका त्याग करके आगे बढ़ता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।
स्वस्थः संतोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः॥ १४५॥

अर्थ—जोबाह्य दश प्रकार के धन धान्यादिक परिग्रहों में समत्व का त्यागकर निर्मम भाव में लीन रहता हुआ संतोषपूर्वक आत्मा में स्थित रहता है वह रातदिन परिचय में आने वाले परिग्रह से विरत पद का धारी है।

परिग्रह विरत श्रावकका मोक्ष मार्गमें बढ़ना—ज्ञानमय सहज आनन्दस्वरूप निज परमात्म तत्त्वकी प्रबल भावनाके कारण इस के परिग्रहके प्रति रंच भी लगाव न रहा। सो अब यह १० प्रकारके परिग्रहोंको त्यागता है एक थोड़ेसे वस्त्र और एक आध पात्र रखता है बाकी सर्वका त्याग कर देता है। उस समय अपने कुटुम्बकी बादकी जिम्मेदारीको बोलकर अपनी भावना बताता है। अब परिग्रहके प्रति भाव न रहा। मैं परिग्रहका त्याग कर रहा हूं। यह नौवीं प्रतिमा सम्बंधी त्याग है। यह परिग्रह त्याग मुनिके परिग्रह त्याग बराबर नहीं है। वहतो महाव्रतमें हैं और यह अभी देशव्रतमें है। अपने लिए वस्त्र, कमण्डल इतने मात्र रखा है, सो अपने पुत्रादिकसे कह रहा कि अब तुम इसकी सम्हाल करो और जो गृहस्थीमें रहकर सामाजिक धार्मिक कार्य आते हैं, जिनमें धन त्याग करना पड़ता है वे सब बहुत ही सम्हाले, मैं तो इनसे अलग होकर अपने निर्विकल्प अखण्ड ज्ञायक स्वरूप परम ब्रह्ममें दृष्टिको दृढ़ करनेके अभ्यासके काममें जा रहा हूं। सो जिसको कुछ देना था, जो विभाग करना था वे सब विभाग करके रुपया पैसा, सोना चांदी, गोधन मकान सभीका त्याग कर देता है। अब यदि यह उसी घरमें रहता है पुत्रोंके कहनेसे तो रहा आता है, पर उसके भावोंमें यह नहीं है कि मैं अपने मकानमें रह रहा हूं। जिस काल पुत्र थोड़ी भी निगाह फेरेंगे, संकेत करेंगे कि अब यहांसे जाइये, तो यह चला जाता है। इसके लिए मंदिर या सार्वजनिक स्थान, त्यागीजनोंके ठहरनेके स्थान ये सब बेरोकटोक पड़े हैं।

परिग्रह विरत श्रावककी वृत्ति—परिग्रह विरत श्रावक परिग्रहका त्यागकर थोड़े मूल्यके वस्त्र रखता है। बहुत मूल्यकी चीज रखनेमें त्यागी साधुके लिए शोभाकी बात नहीं है। इतनी ही बात नहीं, किन्तु एक कलंक है। बहुत बढ़िया पेन रखे, बहुत बढ़िया सुहावनी चटाई रखे, बहुत कीमती अनेक बातें रखेतो उनसे चित्तमें बिगाड़ ही है, विकार ही है, लाभ क्या है? जिन बाह्य पदार्थोंसे राग बने, ऐसी बहुत मूल्यकी चीजें अगर पासमें हैं तो कहीं यह चीज गुम न जाय, ऐसा भाव भी रखेगा। कोई चुरा न ले इसलिए थोड़ा सुरक्षाका भी भाव रखेगा, तो ये सब आत्माकी आराधनामें बाधक हैं। आत्मकल्याणर्थीको तो केवल निज ब्रह्मस्वरूपसे ही अनुराग है, उसका सारा चिन्तन, उसका सारा बोल, उसकी चेष्टा केवल उस ब्रह्म भक्तिके लिए ही है। थोड़े मूल्यके प्रामाणिक वस्त्र रखता है। हाथ पैर धोनेके लिए मात्र बर्तन रखता है। यह रहता कहां है? पुत्रादिक निवेदन करेंतो वह घरके किसी अलग कमरेमें रहता है या अन्य एकान्तमें रहता है। भोजन वस्त्रादिक घरका देवेतो उसे भी ग्रहण कर लेता है, कोई दूसरा भक्तिपूर्वक देवेतो उसे भी ग्रहण कर लेता है। कभी कोई शारीरिक व्यथाहो, असह्य वेदना हुई तो बता भी देता है घरवालोंको और वे वैयावृत्य करेंतो करें, न करेंतो न करें, उस पर कोई

Version 1

अधिकार नहीं चलाता। जैसे कि घरमें रहने वाले लोग पुत्रादिक कोई कार्य न करें उसके मन माफिकतो अभी तक यह डाटता था, पर अब इसको डाटनेका या कुछभी कहनेका अधिकार नहीं है, यह सब उपशम भावसे रहता है। किसी भी समय किसी भी घटनामें यह नवम प्रतिमाधारी श्रावक पुत्रादिकसे कुछ भी उलाहनाकी बात नहीं कहता कि मैंने इतना सारा धन कमाया, मैने यह मकान बनवाया, हमने तुमको यह मकान दिया है आदि।

परिग्रह विरत श्रावकका उत्कर्ष—भैया, एक सहज आत्म स्वरूपका अनुभव होने पर कैसा व्यवहार करना चाहिए यह सिखानेकी जरूरत नहीं रहती। जिसको आत्मस्वरूपके अनुभवकी धुन लग गई है उसका स्वयं ही उपादान इस योग्य होता है कि जो अपने आपमें क्षोभ न करे और दूसरेके क्षोभका कारण न बने। यह परिग्रह त्यागी श्रावक अपना समस्त समयजो भी बचता है भोजन पान आदिकसे, वह धर्मध्यानमें लगाता है, दूसरे से सुनना, खुद पढ़ना, दूसरोंको सुनाना, तत्त्ववार्ता करना, एकान्तमें रहकर अनेक प्रकारके चिन्तन करना, भावना करना, धर्म सम्बंधी सभी दृष्टियोंका यह प्रयोग करता है। अब नवम प्रतिमामें रहता हुआ यह श्रावक इतना अभ्यस्तहो गया है कि अब पुत्रादिक कोई वार्ता पूछतेतो उसकी अनुमोदना अथवा सम्मति नहीं देता। नवम प्रतिमा तकतो कदाचित कोई पुत्र कुछ बात पूछले, क्योंकि नया-नया भार लिया है पुत्रने तो उसमें कितनी ही कठिनाइयां भी आती हैं, कुछ मार्गदर्शन भी चाहिए, सो कदाचित पूछते थे ये पुत्रादिकतो यह संक्षिप्त शब्दोंमें कुछ बात कह भी देता था, पर अब १०वीं प्रतिमाके भाव होने वाले हैं तो इसको अब भाव न रहा कि मैं किसी भी विषयमें कुछ भी सम्मति दूं इस प्रकार अब वह दसम प्रतिमा ग्रहण करनेको उद्यत हुआ।

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे ऐहिकेषु कर्मसुवा।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः॥ १४६ ॥

अनुमति त्याग प्रतिमाका लक्षण व आरम्भ त्याग प्रतिमा तक घरमें रहकर व्रत निभाव करनेका गुण—आरम्भ परिग्रह इस लोक सम्बंधी कार्य इन सबमें अब जिनके अनुमति न रही, समान बुद्धिहो गई वह अनुमति त्यागी श्रावक कहलाता है। घरमें रहता हुआ यह धर्मसाधना करे और इस तरह यह ९वीं १०वीं प्रतिमा तक रह सकता है, पर अधिकार पूर्वक न रहेगा ९वीं और १०वीं प्रतिमा में। दूसरा बताया गया है गृहत्यागी श्रावक मगर गृहत्यागी श्रावक कितना उच्च होना चाहिए, कितना निरपेक्ष होना चाहिए वह परिग्रह त्यागी की तरहहो तो व्रत रखे तब वह गृह विरक्त श्रावक कहला सकता। आज कुछ ऐसी खिचड़ी बन गई है कि मौजके लिएतो गृह विरत हूं इस प्रकारकी घोषणा करते हैं और वृत्ति रखते हैं गृह निरत श्रावक से भी ओछी। घरमें रहने वाला श्रावक सहज विरक्त रहता है, जो उसके पास संग है, परिग्रह है, धन है उससे भी विरक्त रहता है परन्तु घर छोड़कर अपनेको गृहत्यागी, ब्रह्मचारी जैसा कहकर धन संग्रह करनेकी तीव्र लालसा रखने लगते हैं, क्योंकि लोगोंसे धन मिलता है, मुफ्त मिलता है सो उसके प्रति विशेष वासना बन जाती है। पहले था नहीं तो अधिक लालसाहो जाती है, इस कारण जिसको आत्मकल्याण चाहिए उसको अष्टम प्रतिमा तकतो घरमें ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

रहकर निभाव करना चाहिए अन्यथा उसके मनका संतुलन ठीक नहीं रह पाता। जिससे घरमें न बने उससे घर छोड़कर क्या बनेगी? जहां तक घरमें रहकर साधारण रूप जैसी मुद्रा रखकर धर्म साधना करते नहीं बन सकता है तो जिसे वास्तवमें धर्म साधना कहते हैं वह घर छोड़कर भी नहीं बन पाता। दूसरी बात यह है कि घरमें रहकर इन प्रतिमावोंके पालन करने वालेमें अहंकार नहीं आता। मद नहीं होता, घमंड नहीं होता, जबकि प्रतिमातो चाहे पहली दूसरी ही बताये और घर छोड़कर चले तो यह अपने चित्तमें मानने लगता है कि मैं पूज्य हूं, ये लोग मेरे पूजक हैं, इन लोगोंको हाथ जोड़कर ही मुझसे वार्ता करना चाहिए। कितनी ही बातें कल्पनामें वह बढ़ा लेता है जिससे वह खुद भी परेशान रहता है और गृहस्थ श्रावक भी परेशानहो जाते हैं। तो जो आचार्योंके बताए हुए प्रतिमाओंके स्वरूपमें मुद्रा कही गई है उस मुद्रामें रहते हुए धर्म साधना करनेमें आत्महित है।

परिग्रहत्याग प्रतिमाके निर्दोष पालन कर लेनेसे अनुमति त्याग प्रतिमाके पालनकी सुगमता—जिसने परिग्रहका त्याग भली प्रकार निभाया यह भली भांति निर्णय करके कि परिग्रह हीनतो दीन दरिद्री भिखारी भी होते हैं। पर परिग्रह त्यागका महत्त्व उनके है जिनके अन्तरङ्ग परिग्रहका त्याग रहता है। क्रोध, मान, माया, लोभ हास्यादिक भाव ये जिसके अत्यन्त मंदहो गए हैं, इन आभ्यंतर परिग्रहोंसे जो विरक्त हो गया है उसके ही बाह्य परिग्रह त्यागकी शोभा है और वह सार्थक है। सो इस श्रावकने अंतरंग बहिरंग दोनोंही परिग्रहोंके त्यागकी बात निभायी थी और उससे बढ़-बढ़कर अब यह इस स्थितिमें आ गया है कि किसी भी कार्यके अनुमोदनाका भाव नहीं जगता। कोई आरम्भ सम्बंधी बात पूछेतो उसका अनुमोदक शब्द नहीं निकलता। परिग्रह सम्बंधी, घर बनाने आदिक सम्बंधी, व्यापार आदिक सम्बंधित कुछ भी बात कुटुम्बीजन पूछेंतो उसकी अनुमोदना नहीं देता और ऐसा भी समर्थन नहीं करता कि इसने यह बहुत भला किया। कितना विरक्त है यह दसम प्रतिमाधारी श्रावक कि भीतरमें इस प्रकार की भावना और वासना भी नहीं बनती। कार्योंके प्रति राग नहीं रहा है उसके समता बुद्धि होती ही है। यह अनुमति विरत श्रावक, इसको घरके लोग अथवा अन्य साधर्मीजन आहारके लिए बुलाते हैं, चाहे वह आहार खाराहो या रूखा हो, कड़वाहो, मीठा हो,उसमें स्वाद बेस्वाद नहीं मानता, एक ही दृष्टि है कि इस गड्ढेको भरना है जीवन चलानेके लिए और यह जीवन है रत्नत्रयकी साधनाके लिए। जहां रत्नत्रय धर्मके प्रति लगाव है वहां अटपट बात कैसे आ सकती है?

अनुमति त्यागी श्रावकको साम्य बुद्धि—किसी कार्यमें कुटुम्बको नुकसानहो या नफाहो अथवा किसी प्रकारकी वृद्धि हानि हो, उसमें इसको सुख दुःख नहीं होता। सर्व जीव अत्यन्त भिन्न हैं, सर्व जीवोंका भवितव्य उनकी करनीके अनुसार है, जिनके बीच घरमें रहे थे वे भी भिन्न पर जीव है। जैसे मेरे लिए जगतके अन्य जीव हैं वैसे ही घरके लोग भी उनके समान हैं, ऐसा भिन्न अपने आपको निरखा है इस कारण अब इनकी हानि वृद्धिमें हर्ष विषाद नहीं होता। जैसे अन्य जीवों पर गुजरने पर जो बात सम्भव है इनके चित्तमें वही बात कुटुम्बीजनों पर गुजरनेपर सम्भव है। ऐसा यह अनुमति त्यागी श्रावक जैसा उत्कृष्ट श्रावकमें ग्रहण किया है यह सर्व प्रकारकी बाह्य घटनाओंकी अनुमोदनासे रहित है। निरन्तर केवल यह ही वाञ्छा है कि मैं अपने सहज परमात्मतत्त्वको निरखता ही रहूं। इसीमें ही तृप्त रहूं। अन्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुछ कार्य मेरे करनेको नहीं है, ऐसा जिसका दर्शन है वह श्रावक है अनुमति त्यागी। पहले की ६ प्रतिमायें जघन्य प्रतिमायें मानी गई हैं, ७वीं ८वीं ९वीं प्रतिमायें मध्यममें कही गई हैं और १०वीं ११वीं प्रतिमायें उत्कृष्ट श्रावकमें कही गई हैं। उसमें भी अर्थात् उत्कृष्टमें भी उत्कृष्ट ११वीं प्रतिमा वाले श्रावक हैं। ऐसा लौकिक अनुमोदनासे रहित श्रावक अपने आत्माकी आराधनामें लगा हुआ है।

गृहितो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥ १४७ ॥

अर्थ—जो घर से मुनिवन में जाकर और गुरु के निकट व्रतों को ग्रहण कर अनशनादि तपों को तपता हुआ भिक्षावृत्ति पूर्वक आहार ग्रहण करता है वह वस्त्र के एक टुकड़े का धारी उत्कृष्ट श्रावक है।**उद्दिष्टाहार विरत उत्कृष्ट श्रावक**—श्रावकोंमें उत्कृष्ट श्रावक, उत्कृष्ट त्यागीका इसमें वर्णन किया गया है। जो घरसे चलकर मुनिवनमें जाकर गुरुके समीप व्रतको ग्रहण करके भिक्षावृत्ति से आहार करता हुआ तपश्चरणमें समय व्यतीत करता है वह उत्कृष्ट श्रावक है और वह खण्ड वस्त्रका धारी है। इस छंदमें मुख्यतया ऐलकपदका ग्रहण होता है। एकही खण्ड वस्त्र लंगोटी जैसा वस्त्र धारण करने वाले पर गौण रूपसे क्षुल्लक व्रतका भी ग्रहण होता है, क्योंकि वर्णन उत्कृष्ट ही करना चाहिये था और एक ही छंदमें किया गया है। जहां अनेक छंदोंमें वर्णन है वहांतो खोला गया है कि क्षुल्लकका यह स्वरूप हे, ऐलकका यह स्वरूप है, पर इस ग्रन्थमें एकही छंदमें, एक ही विशेषणसे जो वर्णन किया उससे उत्कृष्टतो ऐलकका ग्रहण है और गौण रुपसे क्षुल्लकका। मुनिबन, जिस बनमें मुनि रहें उसे भी मुनिबन कहते हैं और जो मुनियोंका संग है वह भी मुनिबन की तरह है। वहां यह श्रावक खण्ड वस्त्र मात्र रखकर, बाकी सर्व परिग्रहोंका त्याग करता। अनुमति त्याग प्रतिमामें बुलाने पर जाता था, पर यह बुलाना भी छूट गया। अब भिक्षावृत्तिसे जायगा और जहां योग्य विधि मिलेगी वहां आहार ग्रहण करेगा।

अनुद्दिष्ट आहारका तात्पर्य नवकोटि विशुद्ध आहार—अनुद्दिष्ट आहार वह कहलाता है कि जो केवल मुनिके लिए ही आहार न बने। यदि गृहस्थ मुनिका ध्यान करके कि हम इनको आहार देंगे और रसोईघरमें समस्त आहार शुद्ध बनाया जा रहा है तो वहां उद्दिष्ट दोष नहीं आ पाता। उद्दिष्ट दोषका प्रयोजन है कि गृहस्थको केवल साधुके लिए अर्जन न करना पड़े यदि साधुकी बात मनमें आये और उतने मात्रसे उद्दिष्ट माना जायतो फिर अतिथि सम्विभाग व्रत नाम किसका? अतिथि सम्विभाग व्रतमें मैं साधुको भोजन कराऊंगा, ऐसी उसकी प्रतिज्ञा रहती है और व्रती श्रावक है उसके लिए भी विधान है कि वह किसी भी दिन संकल्प कर सकता है कि मैं आज अतिथिको भोजन कराऊंगा। जैसे कि कोई किसी तिथिका नियम रखता है कि अमुक मासमें अमुक तिथिको मैं अतिथि सम्विभाग करूंगा, ऐसा वर्णन है और फिर गृहस्थको चाहे केवल मुनिके उद्देश्यसे ही बनाये मानोंतो प्रथम तो वह साधु देख लेगा कि केवल एक व्यक्तिके लिए आहार बनाया गया, तो वह न लेगा, और न मालूम पड़े बहुत सामग्रीहो तो वहतो नवकोटि विशुद्ध रहेगा। उसे दोष न आयगा। जहां उद्दिष्ट आहारका त्याग बताया है उन छंदोंमें नवकोटि विशुद्ध आहार कहलाता है। इस विषयमें अन्य ग्रन्थोंमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्पष्ट विवरण है। कार्तिकेयानुप्रेक्षामें ये ही शब्द दिये हैं कि जो भिक्षावृत्तिसे नवकोटि विशुद्ध आहारको करता है वह उद्दिष्टाहार विरत है। उद्दिष्टाहार विरतसे मतलब केवल उद्दिष्टाहारसे मतलब नहीं, किन्तु उद्दिष्ट अन्य भी चीजहो, आसन शयन उपकरण आदिक, वे सब गर्भित हैं, पर इन सब उद्दिष्टों की मुख्यता मुनिव्रतमें है, यहां भी अभ्यास रूप निरखा जाता है।

जो पुरुष नवकोटि विशुद्ध आहार करता है भिक्षावृत्तिसे दूसरे घर पर भ्रमण करके तो वह उद्दिष्टाहार विरत कहलाता है। उस आहारमें न मन में संकल्प होता कि ऐसा किया जाय, न मनसे कराया गया हो, न मनसे अनुमोदा गयाहो, इसी प्रकार वह आहार न वचनसे किया गया हो, न कराया गयाहो, न अनुमोदा गया हो, इसी तरह वह आहार न कायसे किया गयाहो, न कराया गया हो, ऐसे आहारको ग्रहण करने वाला साधु पुरुष उद्दिष्टाहार विरत कहलाता है। यह श्रावक मुनिकी ही तरह श्रावकके घर जाकर भिक्षा भोजन करता है, श्रावकोंके द्वार पर पहुंचकर भी वह मांगता नहीं कि मुझे भोजन दो, न आहारके लिए द्वारा खटखटाता है। जैसे मुनिके योग्य नवकोटि विशुद्ध आहार बताया गया वैसा आहार करता है। अन्न पवित्र होता हुआ वह दातार और पात्रको भी पवित्र करता है। दातार शुद्ध होता हुआ वह अन्न और पात्रको भी पवित्र करता है। पात्र पवित्र होता हुआ दातार और अन्नको भी शुद्ध करता है। इस प्रकारके नव कोटिका विशुद्ध आहार करने वाला उत्कृष्ट श्रावक त्यागी कहलाता है।

उद्दिष्टाहारविरत श्रावकके दो प्रकार—उद्दिष्टाहारविरत श्रावकके दो भेद हैं—(१) लंगोटी व एक वस्त्र रखने वाला, (२) केवल लंगोटी रखने वाला, अर्थात् क्षुल्लक और ऐलक। क्षुल्लक शब्दके साथ श्रावक शब्द न जोड़ना चाहिए। जैसे कोई कहे कि यह क्षुल्लक श्रावक बन गया है तो यह अनुचित प्रयोग है। क्षुल्लकका अर्थ है छोटा, तुच्छ, तो अर्थहो जायगा तुच्छ श्रावक "क्षुल्लक शब्दके साथ मुनि शब्द जोड़ा जाता है—क्षुल्लक मुनि अर्थात् छोटा मुनि"। ऐलक श्रावक नहीं किन्तु ऐलक मुनि, अर्थात् ईषत् वस्त्र वाला मुनि। णमोकार मंत्रमें निर्ग्रन्थ मुनिको ही ग्रहण किया गया है, पर क्षुल्लक शब्दका जो अर्थ है, उसके साथ श्रावक शब्द नहीं लगता। अगर उसे श्रावक शब्दसे बोलेंगेतो उत्कृष्ट श्रावक कहेंगे। तो यह उत्कृष्ट श्रावक क्षुल्लक अपने केश उस्तरासे भी बनवाता है, कैंचीसे भी कतरवाता है और बैठकर हस्तपात्रमें भी भोजन करता है अथवा बर्तनमें भी भोजन करता है। वसुनंदी श्रावकाचारमें दोनों बातें बतायी गई हैं, वैसे रिवाजके अनुसारतो क्षुल्लक पात्रमें ही भोजन करे, ऐलक हाथमें भोजन करे, एक नियम है, पर अभ्यास रूपकी बात अलग है। यह चारों पर्वोंमें नियमसे उपवास करता है। वह पर्व सम्बंधित तीन-तीन दिनमें शामको कुछ ग्रहण नहीं कर सकता। अर्थात् उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य किसी भी प्रकारका प्रोषध करता है।

भोजनके मिलने और न मिलनेमें इस श्रावकको समता परिणाम रहता है, खेद खिन्न नहीं होता। यह बात उस महापुरुषके बन सकती है जिसको आत्माकी धुन है। आत्मानुभवको ही जो सर्वोत्कृष्ट वैभव मानता है और अन्य क्रियाकलापोंको या संघ समागमोंको वह बेकार समझता है उसमें ही ऐसी सहनशक्तिहो सकती है कि आहार न मिलने पर भी वह समता परिणाम रख सके। जिसको आत्मदृष्टि नहीं मिली उसको समता परिणाम ऐसी स्थितिमें रखना बहुत कठिन है। दूसरे उत्कृष्ट श्रावककी यानि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऐलककी भी वही क्रिया है किन्तु नियम है यह कि केशलुञ्च करे, पिछी रखे और हाथमें भोजन करे। ये तीनों नियम आवश्यक हैं ऐलकमें और ये तीनों नियम क्षुल्लकमें आवश्यक नहीं। केशलुञ्चके बजाय बाल बनवाभी सकता है पिछीके बजाय कोमल कोई वस्त्र सूतके भी रख सकता है और पात्रमें भी भोजन् कर सकता है। उत्कृष्ट श्रावकको मुनिकी तरह योग धारण करनेका अधिकार नहीं अर्थात् उस प्रकारका तपश्चरण श्रावकको नहीं कहा गया है जिसे प्रतिमायोग कहते हैं। गर्मीमें पर्वतके शिखर पर बैठना, बरषातमें वृक्षके नीचे खड़े रहना, शीतमें नदीके किनारे रहना आदिकजो विशेष योग विधान हैं वे मुनिके लिए ही कहे गए हैं। मुनियोंमें भी विशिष्ट समर्थ मुनि करते हैं तथा जिन्हें आचार्य समर्थ समझते हैं उनको आज्ञा देते हैं।

श्रावकके षट्कर्मोंमें प्रथम आवश्यक कर्म इज्या—श्रावकोंमें सामान्यतयाजो घरमें रहने वाले पुरुष हैं उनकी चर्या षट्कर्मोंमें बतायी गयी है। जिन षट्कर्मोंको वसुनन्दी श्रावकाचारमें इस प्रकार कहा है इज्या, वार्ता, दान, स्वाध्याय, संयम और तप वैसे प्रसिद्ध रूपसे षट्कर्म ये हैं देवपूजा, गुरुपास्तिकी जगह वार्ता नामका कर्तव्य रखा है। जिस वार्तामें अन्य अनेक बातें भी आती हैं और गुरुपास्ति भी आता है, तथा गुरुपास्ति इज्यामें भी आ जाता है। इसलिए दोनों प्रकारके वर्णनोंमें कुछ विरोध नहीं है। पहला कर्त्तव्य है पूजा। उसके ५ भेद किए गए। नित्यपूजा, चतुर्मुख पूजा, कल्पवृक्ष पूजा, अष्टांग पूजा और इन्द्रध्वज पूजा। जो प्रतिदिन शक्ति अनुसार घरसे द्रव्यले जाकर जिनलयमें जिनेन्द्र देवकी पूजा करना अथवा चैत्यचैत्यालय बनवाना, उनके प्रबंधके लिए जायदाद आदिक लगाना और मुनिजनोंकी पूजा करना नित्य पूजा कहा है। चतुर्मुख पूजा, मुकुटबद्ध राजावों द्वाराजो कोई पूजनका विधान होता है वह चतुर्मुख पूजा है। कल्पवृक्ष पूजा, याचकोंको इच्छानुसार दान देकर तृप्त करता हुआ उदार भाव रखकरजो पूजन करता है जिनेन्द्रदेवकी, उसे कल्पवृक्ष पूजा कहते हैं। अष्टाह्निका पर्वमेंजो पूजाकी जाती वह अष्टाह्निका पूजा है, और इन्द्रादिक द्वाराजो जिनपूजाकी जाती है वह इन्द्रध्वज पूजा है।

श्रावकका द्वितीय व तृतीय कर्त्तव्य वार्ता व दान—श्रावकका दूसरा कर्त्तव्य है वार्ता। इसमें मुख्यता है न्यायपूर्वक धन कमानेकी। जो गृहस्थके योग्य असि मषि कृषि आदिक कर्त्तव्य बताये गए हैं जो आजीविकाके साधन हैं उन्हें न्यायपूर्वक करना यह वार्तामें मुख्य बात है, तीसरा कर्त्तव्य है दान। इस दानको चार भागोंमें बांटा गया है। (१) दयादान, (२) पात्रदान, (३) समदान और (४) सकलदान। जो प्राणी दयाके पात्र हैं उनपर दया करके दान करना दयादान कहलाता है। जिस गृहस्थके दयालुता है कि कोई भी मांगने आये, भूखा है, ठंडका सताया है तो उसको वस्त्रादिक दे, आहार आदिक दे, वह सब दयादान है। पात्रदान—तपस्वी साधु संतोंको नवधा भक्तिपूर्वक निर्दोष आहार नवधा पुर्वक देना, कमण्डल पिछी आदिक देना ये सब पात्रदान कहलाते हैं। समदान कहलाता है गृहस्थीमें परस्पर बिरादरीमें, साधर्मी बन्धुवोंमें, जैसे कन्या देना, भूमि देना, धन देना, साधन जुटाना साधर्मी भाइयोंको, यह सब समदान कहलाता है। और सकलदान वह कहलाता है कि अपने परिवारके किसीको या समाजके किसी व्यक्तिको सर्वस्व सौंपकर सबका त्याग कर देना यह सकलदान है। सकलदानका फल यह है कि वह फिर मुनि दीक्षाले लेता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

श्रावकका कर्त्तव्य स्वाध्याय व संयम—चौथा कर्त्तव्य है स्वाध्याय। तत्त्वज्ञानका अध्ययन अध्यापन करना, जिसमें तत्त्वपर दृष्टि जाय, सहज आत्मस्वरूप पर दृष्टिकी साधक भगवद्भक्ति अथवा वस्तुस्वरूपकी चर्चा आदिक बनेतो वह सब स्वाध्याय कहलाता है। ५वां कर्त्तव्य है संयम। इन्द्रिय संयम प्राणिसंयममें बारह व्रतोंका पालन करना यह गृहस्थका संयम है और छठवां कर्त्तव्य है तप। इच्छाका निरोध, अपनी शक्तिके अनुसार विषय वाञ्छाको दूर कर अपनी धर्मसाधनामें लगना यह गृहस्थके योग्य तप कहलाता है। तो ऐसे इन षट् कर्त्तव्योंको करता हुआ श्राबक अपना मनुष्य जीवन सफल करता है और जैसे-जैसे कषायका उपशम होता जाता है, आत्मबल बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे वह प्रतिमावोंमें बढ़ता जाता है। और बढ़-बढ़कर फिर उसका अन्तिम प्रतिमाका रूप कहलाता है उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा। यह उत्कृष्ट श्रावक भगवद्भक्ति और आत्मस्वरूपकी दृष्टि इन दोनों कार्योंको ही मुख्य समझता है। फिर चूँकि आहार करना आवश्यक है अथवा अन्य कोई धार्मिक क्रिया करना आवश्यक है सो करता है, पर उन समयोंमें भी अपनी इस दृष्टि और प्रतीतिको नहीं छोड़ता। उपदेश भी देगातो उपदेश देता हुआ अपने आपके स्वरूपकी दृष्टिकी भी सम्हाल रखेगा। यह तो स्वाध्यायकाभेद है उपदेश। स्वाध्याय वह कहलाता है कि जहां स्वका अध्ययन हो, आत्मतत्त्वका अध्ययन चले, तो उपदेष्टा जो भी उपदेशमें कहता है वह अपनेको भी सुनाता रहता है, दूसरोंको भी सुनाता रहता है, उपदेशमें भी अंतस्तत्त्वकी दृष्टि स्वयंके अध्ययनकी रहती है। कोई बात पूछता है तो केवल स्वकी दृष्टि दृढ़हो, कोई शंका न रहे मेरेमें अथवाजो समझ रखी है वह पदार्थ मेरेमें पुष्ट जंचे, इन भावोंसे पृच्छना चलती है। जो लोग आत्मदृष्टिकी भावनाको छोड़कर अन्य भावोंसे पूछते हैं, ग्रहण करते हैं कि मेरा इसमें बड़प्पन जाहिर होगा या वक्तासे उत्तर न बनेतो मेरी इज्जत बढ़ेगी आदिक भावोंसे प्रश्न करते हैं तो वह स्वाध्यायमें नहीं माना गया है, इसी प्रकार आम्नाय पाठ करना, भक्तिका पाठ, विनतीका पाठजो भी पाठ करना है उसका भी अर्थ समझता हुआ करे और उसको अपने पर घटाता हुआ करेतो वह स्वाध्याय है। अनुप्रेक्षामें तो अपने आत्मतत्त्वका चिन्तन ही चलता है विशेषतया। तो जहां अतंस्तत्त्वकी दृष्टि की साधना बनती है ऐसे ये वाचना आदिक ५ प्रकारके स्वाध्याय ये स्वाध्याय कहलाते हैं।

धर्मके साधनोंमें साधकोंकी एकमात्र प्रधान दृष्टि—केवल एक ही दृष्टि है। इन सब साधकोंके मायने मुझेतो परमात्मपद पाना है अथवा यह भी नहीं सोचना है किन्तु सहज आत्माका जो स्वरूप है बस उसको निरखना है और इस ही रूप अपनेको मानना है। इसका फलतो यह ही है कि मैं परमात्मा बनूँगा। तो परमात्मपदसे पहलेकी जितनी भी स्थितियां हैं वे सब इसको बेकार लगती हैं और यहां तक भी चिन्तन चलता है कि इस ज्ञानानुभूतिके अतिरिक्त जो कुछ भी उसकी चेष्टायें होती हैं वे सब अज्ञान चेष्टायें हैं। अज्ञान, मिथ्याज्ञानको भी कहते हैं। अज्ञान, ज्ञानका पूर्ण विकास न हो, ऐसी स्थितिको भी कहते हैं। कषाय भी अज्ञान है, मिथ्यात्व भी अज्ञान है। तो जो जो भी चेष्टायें हुईं, हो रही हैं वे सब अज्ञान चेष्टायें हैं। ऐसा साधुजन भी ध्यान रखते हैं कि मेरी पहलेजो चेष्टायें रहीं वे सब अज्ञान चेष्टायें हैं। ज्ञानचेष्टातो ज्ञानसे ज्ञानमें ज्ञान हीहो, इस तरहकी जो वृत्ति है वही वास्तवमें ज्ञानचेष्टा है। जैसे धनी पुरुष पाये हुए धनको देखकर संतुष्ट रहे, ऐसी वृत्ति नहीं कर पाता, ऐसे ही ज्ञानी पुरुष पाये

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हुए गुण विकासको देखकर सन्तुष्टहो जाय, रम जाय, ऐसा न करके अपनी त्रुटियोंको सामने देखता है, उस कमी पर दृष्टि रखता है कि अभी यह भी हटाना है, यह भी हटाना है और इस प्रकार अपनी उन कमियोंको हटाता है, गुण विकास होना तो स्वाभाविक ही बात है। तो कर्त्तव्य यह है कि परमात्मा होनेका ध्येय बने, भले प्रकार निर्णय बने और कुछ वाञ्छा न रहे, उसके लिए ही धुन बने और प्रयत्न बने, यह ही आत्महित प्राप्त करनेका वास्तविक उपाय है।

पापमरातिधर्मो बन्धुर्जीवस्यचेति निश्चिन्वन्।
समयं यदि जानीते श्रेयो ज्ञाताध्रुवं भवति॥ १४८॥

अर्थ—पाप जीव का शत्रु है व धर्म बंधु। ऐसा निश्चय करने वाला आगम को जानता है—आगम के अनुसार प्रवृत्ति करता है तो वह निश्चय ही अपने श्रेय (कल्याण) का ज्ञाता है।

जीवका बैरी पाप—इस जीवका बैरीतो पाप है और बंधु धर्म है, ऐसा निश्चय करता हुआ जो ज्ञानी समयको जानता है मायने आत्माको जान रहा है वह अपना कल्याण अवश्य करेगा, ऐसा निश्चित है। इस अधिकारमें ११ प्रतिमावोंका वर्णन किया गया है। ११ प्रतिमाओंको अंगीकार कराकर एक बड़ी दृढ़तासे अपने आपमें लीनता पानेके लिए यहां कुछ प्रेरणा दीजा रही है। जिससे आत्माको कष्ट पहुंचे, वहीतो अनिष्ट है और कष्ट पहुंचानेका जो साधनहो वही हमारा बैरी है। तो कष्ट है आकुलता। उस आकुलताका साधन है पाप। कोई मनुष्य यदि जीवनमें यहीं पाप कर रहा है तो थोड़ी देरको पाप करते समय वह मोहवश मौज मान रहा है, वही थोड़ी देर बाद कष्टका अनुभव करने लगता है। फिर पापका बंध हुआ, उसके उदय कालमें तो ऐसे अनिवारित रूपसे कष्ट करीब आयेंगे कि जिनका कोई उपाय भी न बन सकेगा। तो जीवका बैरी है तो पाप है। लोभवश लोग पाप करते, मानवश पाप करते, लोभ और मान येदो ही खास मूल चीजें हैं, पापके कारणमें। क्रोध जिसको आता है तो मान या लोभके कारण आता है, नहींतो व्यर्थ गुस्सा करनेकी किसको पड़ी है। कोई मानमें फर्क दिखेतो गुस्सा आने लगता। लोभमें जो इष्ट समझा उसमें विघ्न आयेतो क्रोध करता है और मान और लोभके ही कारण मायाचार करता है। करीब करीब ऐसा समझाजा सकता है कुछ स्पष्ट समझनेके लिए कि आकुलताकी जड़तो है मान और लोभ उसके फलमें बनता है क्रोध और माया। यद्यपि चारों कषाय भिन्न-भिन्न स्वरूपमें हैं और उनके साधन कर्मोदय भी भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु अपनेको प्रयोग रूप करनेके लिए ऐसा जंचता है कि जड़ है समस्त अनर्थकीतो मान और लोभ है। ये मान और लोभ पाप तब तक दूर नहींहो सकते जब तक अपने आपके बारेमें यह प्रतीति न बने कि मैंतो समस्त विकारोंसे रहित केवल ज्ञातादृष्टा स्वभाव वाला हूं। यह प्रतीति होते ही कि मैं ज्ञातादृष्टा स्वभाव मात्र हूं और ऐसा ही रहनेमें मेरा कल्याण है, यह ही अपने आप पर न्याय है। ऐसी प्रतीति होते ही मान और लोभका भंगहो जाता है।

जीवके शत्रुभूत पापोंमें मिथ्यात्व व क्रोधका निर्देशन—जीवका शत्रु है पाप। उन पापोंमें मुख्य पापतो है मिथ्यात्वजो संसार परिभ्रमण करानेका मूल है। जो मैं नहीं हूं उसे मान लेना कि यह मैं हूं, जो मेरा नहीं है उसे मान लेना कि यह मेरा है, यह आशय तत्काल भी महान संकट पैदा करता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। और इस आशयमें रहकर जो बंध होता है वह कर्मबंध अनेक भवोंमें जन्ममरण करानेका कारण बनता है। तो यहां यह निश्चय करना कि जीवका शत्रु है तो पाप है। और उन पापोंका सिरताज है तो मोह है, मिथ्यात्व है। फिर दूसरा पाप समझिये क्रोध। गुस्सा आती है तो जीवका उपयोग किस ओर लगता है? क्या आत्माकी दृष्टि रखते हुए कभी गुस्सा आ सकता? जब भी गुस्सा आता है, जिसके भी गुस्सा आता है उसके उपयोगमें कोई बाह्य विषयभूत पदार्थ रहते हैं। तोजो बाहर-बाहर डोल रहा है उसके हीतो यह पाप चलता है। घमंड इस जीव पर ऐसा आवरण छाया है कि यह अपने स्वरूपको न पाकर जो पर्याय मिली है उस पर्यायमें अहंबुद्धि रखता है, मानका कारण पर्यायमें अहंबुद्धि है। जिन त्यागी साधुवोंको भी बेतुकी क्रोध आता रहता है उसका कारण पर्यायबुद्धि ही हो सकता है। यह गृहस्थ अपने देहको निरखकर कल्पना करता है कि मैं अमुकचंद हूं, अमुकलाल हूं, व्यापारी हूं, सर्विस वाला हूं, इज्जतवाला हूं, वह यहांकी पर्यायमें आत्मबुद्धि करता है। तो पर्यायमुग्ध नग्नभेषी पुरुषने नग्न शरीरमें आत्मबुद्धि की है कि मैं मुनि हूं, जिसको आत्माके ज्ञायकस्वरूपमें आत्मतत्त्वकी दृष्टि नहीं बनती उसके पर्यायबुद्धि जगती है, और जिसके पर्याय बुद्धि है उसके क्रोधादिक कषायें बनती हैं, बढ़ती हैं।

जीवके शत्रुभूत पापोंमें मान, माया, लोभ व कामका निर्देशन—तीसरा पाप है मान घमंड इस मानके वशमें यह मनुष्य न जाने क्या-क्या अनर्थ नहीं कर रहा है। अपनेको भी सताता रहता है, दूसरोंको भी तुच्छ मानता है। और उसके खातिर कितनोंका ही यह प्राण भी दुःखाता है। चौथा पाप है माया, छल कपट करना। कोई बात किसी एकसे और तरह कहे, दूसरेसे और तरह कहे, तीसरेसे और तरह कहे या मनमें कुछ और भाव है, कहते कुछ और ढंगसे है तो इस प्रकारकी जो भीतर वक्र वृत्ति है, उसके करनेमें कितना कष्ट करता है यह जीव? दुःखी होता रहता है, फिर भी मोहका ऐसा उदय है कि उस दुःखको दुःख न मानकर कोई स्वार्थ सिद्धि सधती हुई जानेतो उसका हर्ष मानता है, पर यह माया बहुत बुरा पाप है। इसको तो शल्य तकमें भी गिनाया है। ५वां पाप है लोभ। बाह्य वस्तुओंकी इतनी तृष्णा रखना कि वही-वही उपयोगमें समाया रहे और उसीके लिए ही चेष्टायें बनती रहें तो यह तृष्णा अनर्थकारिणी वृत्ति है। एक कामका भी लोग नाम लेते हैं कि काम भी बैरी है, सो काम बैरी तो बहुत बड़ा है ही, पर इस कामका अन्तर्भाव लोभमें आता है, पर इतना बुरा पाप है काम। सब लोभोंमें सबसे बुरा लोभ है कामका। इस कामको लोभसे अलग गिनानेका प्रयास किया गया है। जब जीवके बैरी ६ माने गए हैं,—काम, क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह। ये पाप भाव है।

पापभावका विकट फल बन्धन विपत्ति—पाप भावके होते ही जो जीवके एक क्षेत्रावगाहमें कार्माणवर्गणायें हैं वे कर्मरूप बन जाती हैं। यह प्राकृतिक बात है। सूर्यका उदय हुआ तो बताओ कौन उससे प्रेरणा करने गया कि यहां धूप आ जाय? ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक योग है कि जब सूर्यका सन्निधानहो तो यहां की पृथ्वी इस प्रकार परिणम जाती है। ऐसे ही उन कर्मोंको कौन समझाने जाता है कि जीव विकार करेतो वे कर्म बंध जाते? तो न इसको प्रेरणा जीव देता है न कोई दूसरा देता है किन्तु सहज ही ऐसा निमित्तनैमित्तिक योग है कि जीवमें विकारभाव जगा कि कार्माणवर्गणायें तत्काल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर्मरूप परिणम जाती हैं। और कर्मरूप परिणम गईं वे वर्गणायें जब उदित होती हैं या उदीरित होती हैं याने इस आत्मासे ऐसे निकलती हैं तो उस समय फिर यह जीव विकृत बन जाता है। यहां भी कौन पढ़ाने लिखाने गया, किन्तु ऐसा ही सहज निमित्त योग है, तो यह पापभाव इस जीवका बैरी है।

जीवका बन्धु धर्म—धर्मभाव जीवका बन्धु है। धर्म नाम है आत्माके स्वभावका। ऐसा स्वभाव तो सदैव है इसलिए आत्मा धर्मरूप निरन्तर है। चाहे निर्मोह अवस्थाहो, कोई अवस्थाहो, स्वभावमयतो यह जीव सदैव है, अगर सदैव है तो क्या करे? किसी लकड़हारेके अंगौछाके खूँटमें लाल बंधा है किन्तु उसका पता न होनेसे वहतो दरिद्र ही बन रहा है, भिखारी है, जैसे एक दोहामें कहते हैं कि—

"सबके पल्ले लाल हैं, लाल बिना कोई नहीं।
याते भयो कंगाल है, गांठ खोल देखी नहीं॥

वह धर्म जिसके प्रसादसे मोक्ष मिलता है, वह हम आपमें इस वक्त भी मौजूद है, वह कहीं बाहर नहीं गया, धर्म तो है पर धर्मका पालन नहींहो रहा। सो वह धर्म व्यक्त नहीं हो रहा, दो बातोंकी कमी है। पालनके मायने हैं उसकी दृष्टिआ जाना। मैं सहज शान्तस्वरूप हूं, आनन्दमय हूं, कष्ट रहित हूं, विकाररहित हूं, स्वतंत्र सत् हूं इस प्रकारकी दृष्टि नहीं बनती, सो यह धर्मसे विमुख कहलाता है। यह ही दृष्टि बनी कि धर्मका पालन होने लगा। नग्नहो जाना धर्मका पालन नहीं है, किन्तु नग्न अवस्थामें धर्मका पालन सुगम है और नग्न भेष पाये बिना, निर्ग्रन्थ हुए बिना, सर्व ओरसे निःशल्य हुए बिना धर्मका पालन नहीं बन पाता, इस कारण मुनिपदका धारण आवश्यकहो गया, मगर नग्न भेष स्वयं धर्मपालन नहीं है, वह धर्मपालनमें सहायक है, वातावरण है, आवश्यक है, अनिवार्य है, फिर भी स्वरूपदृष्टिसे देखेंतो धर्मपालनतो आत्माका आत्मामें भावरूप ही हो सकता है। शरीर जड़की क्रिया धर्मरूप नहींहो सकती। पर जो अनादिकालसे विकारभावमें पला आया है वह जीव एकदम इस धर्ममें मग्न कैसेहो सके? पूर्वबद्ध कर्मविपाकतो सता रहे हैं, अर्थात् उनके उदयमें यह जीव विकृत बन रहा। तो बराबर हैरानी होती हैतो बाह्य वातावरण धर्मपालनके अनुरूप अनुकूल बनानाही पड़ेगा। इस तरह है तो अनिवार्य मुनिभेष,जो कुछ बाह्य है फिर भी स्वरूपदृष्टिसे देखेंगेंतो आत्माका भाव ही धर्मपालन बन सकेगा। शरीरकी परिस्थितिका नाम धर्मपालन नहींहो सकता। तो आत्माका बंधुमित्र, गुरु, रक्षक, शरण, सर्वस्व धर्म है। ऐसा जो निश्चय रखता है वह पुरुष कल्याणका पात्र होता है।

निज उपादानकी सम्हालमें कल्याणका लाभ—मिथ्यादृष्टि जीवोंकी बुद्धि सुख दुःख पानेमें दूसरी ओर जाती है। यह इस तरह रहे, लड़के यों बोलें, व्यवहार करेंतो मेरेको सुखहो जाता, यह अनुचित बोलेंतो मेरेको दुःखहो जाता, यह कल्पना गढ़ रखी है मोही जीवने। जो सुख हुआ है इस मोही गृहस्थको सो लड़के के सद्व्यवहारकी वृत्तिसे नहीं होता है किन्तु भीतरमें कल्पना बना डाली है, यह मेरा बड़ा भला है, मेरेको बड़ा अच्छा है उस कल्पनामें सुख मानता है। कहीं बाह्य पदार्थोंसे सुख निकलकर आत्मामें नहीं आता। जिसने किसी बाह्य पदार्थकी कुछ परिणतिको दुःख माना है सो वहां दुःख किसी बाह्य पदार्थसे नहीं आया, किन्तु कल्पना गढ़ रखी है कि यह मेरे सुखमें बाधा क्यों डालता? मेरे सुखके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

साधनको क्यों बिगाड़ता आदिक उस कल्पनामें दुःखका प्रादुर्भाव है। सुख दुःख बाह्य पदार्थोंसे नहीं, इस कारण बैरी कौन है? तो मेरेमें रहने वाला भाव बैरी है, और मित्र भी कोई हैतो मेरेमें रहने वाला भाव ही मित्र बन सकता है। तो पापभाव है बैरी और धर्मभाव है बन्धु, ऐसा निश्चय करने वाला पुरुष इस आत्माको जानता है, इस आत्मस्वरूपको दृष्टिमें रखता है, ऐसेही आत्मा "ज्ञानसे ज्ञानमें ज्ञान हीहो" इस परिस्थितिको प्राप्त करता है। सोजो समयको, अतंस्तत्त्वको जानता है वही श्रेष्ठ ज्ञाता कहलाता है। जब कभी कष्टका बाह्य प्रसंग जुड़ता है उस समय ज्ञानी अपने कमाये हुए कर्म विपाकके कारण वह कष्टभी मानताहोतो भी वहां प्रतीति खोटी नहीं बनती और वह तत्त्वार्थका निर्णय रखता है कि मेरे ही कर्मका उदय है, उसका निमित्त पाकर कष्टहो रहा है। कोई दूसरा जीव मेरेको कष्ट नहीं देता। वह भी अपनी शान्तिके लिए अपना प्रयत्न करता है। उस मोहीको अपनी शान्तिके लिए प्रयत्न जंचा कि मेरेको लक्ष्यमें लेकर वह कोई विरोधकी बात किया करे। उसने इसीमें ही शान्ति समझा पर वह अपनाही कार्य कर रहा है वह मेरी विराधना नहीं कर सकता। कर्मोदयवश मैं ही अपने भावोंसे चिगकर अपनी विराधना कर पाता हूं, दूसरा नहीं, ऐसा ज्ञानीके निर्णय है, जिस ज्ञानबलके आधार पर थोड़ा आत्मभावसे चिगता है, निज दृष्टिसे हटता है तो बहुतही जल्दी फिर अपने आपको सम्हाल लेता है। ऐसा ज्ञानी पुरुष आत्मकल्याणमें प्रगति करता चला जाता है।

येन स्वयं वीतकलंकविद्यादृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावं।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेवसर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु॥ १४९॥

अर्थ—जो पुरुष अपने आत्माको कलंकरहित ज्ञानदर्शनचारित्रका पात्ररूप अपनेको निरखता वह पुरुष तीन लोकमें सर्वश्रेष्ठ सिद्धिको प्राप्त करता है, इसमें रंच भी संदेह नहीं। मैं हूं, दर्शन, ज्ञान, चारित्रका आधार—विश्वास होना, जानकारी होना, और रम जाना। मोही जीव भी दर्शन, ज्ञान, चारित्रका परिणमन कर रहा है और ज्ञानी संत भी दर्शन, ज्ञान, चारित्रका परिणमन कर रहा है। मोही जीव विश्वास किए हुए है विषयभूत और बाह्य पदार्थांमें कि ये हितरूप हैं और बाह्यविषयभूत पदार्थोंमें ही यह अपना ज्ञान बनाये हुए है और उन्हींका विकल्प करके रमण कर रहा है। मोही जीवका श्रद्धान, ज्ञान और रमण बाह्य परक है और ज्ञानी संतका श्रद्धान, ज्ञान, रमण अन्तः परक है। निज सहज आत्मस्वरूपमें श्रद्धा है इसकी कि मैं यह हूं, अन्य रूप श्रद्धा इसकी कभी बनही नहीं सकती। यह है ही नहीं अन्य रूप, फिर उल्टा कैसे मानेंगे? श्रद्धालु है तो अपने सहज आत्मस्वरूप अपनेको मानना यह तो है श्रद्धान और इसही तत्त्वको जानते रहना, इसका ही ज्ञान करना यह है उसका ज्ञान और ऐसा ही ज्ञान बनाये रहने रूप रम जाना यह है उसका रमण। जिस पुरुषने ऐसे निष्कलंक रत्नत्रयस्वरूप अन्तस्तत्त्वको प्राप्त किया है वह तीन लोकमें श्रेष्ठ है।सिद्धि है वह क्या है? अपने आत्माके विकासके अतिरिक्त कौनसी ऋद्धि सिद्धिको प्राप्त करना है।

स्वाध्याय और सत्संगमें जीवनक्षण व्यतीत होनेका महत्त्व—हम आपका बहुत अच्छा भवितव्य होगाजो स्वाध्यायमें रुचि जगती रहे। आंखें काम नहीं करतींतो सुननेका काम कियाजा सकता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। कदाचित् दोनों ही काम न करेंतो इस ज्ञानके द्वाराजो संस्कार बनाया है उस संस्कारसे मननके कामको कौन रोक सकता? स्वाध्यायमें प्रीति जगतीहो और सत्संग अधिक समय मिलता रहेतो वह उत्तम भवितव्यकी निशानी है। सत्संगका बड़ा महत्त्व है, पर सत्संग कहलाता वह संग है कि जिसमें रहने वाले प्रमुख जन संसार, शरीर, भोगोंसे विरक्त रहकर केवल आत्मविकासकी ही धुन बनाये रहते हों वे हैं सत्पुरुष, ऐसे पुरुषोंके संगको सत्संग कहते हैं। यदि ऐसा सत्संग नहीं है तो वह संग नहीं है, वहतो दु:संग है, आकुलताका उत्पादक है। यदि कुछ लोगोंका ऐसा समूह बना है जिसमें एकके भी आत्माकी धुन नहीं है, बाहरी बाहरी क्रियावोंमें ही रम रहे हैं। देहमें आत्मबुद्धि बनी हुई हैतो मान और लोभका मूल कहांसे खतम होगा? और जब भीतरमें ही रम रहे हैं। देहमें आत्मबुद्धि बनी हुई तो मान और लोभका मूल कहांसे खतम होगा? और जब भीतरमें मान और लोभ बसा हुआ है तो वह फूटेगा, पद-पद पर कलह होगा, एक दूसरेको न सुहायगा। ये सारी बातें बनने लगेंगी। यदि वास्तविक सत्संग मिल जायतो इससे बढ़कर लोकमें कोई दूसरा वैभव नहीं, तिर जायगा वह पुरुष। तिरना यह ही कहलाता है कि बाह्य पदार्थोंसे दृष्टि हटाकर सहज आत्मस्वरूपमें दृष्टि रम जाय, जिसके फलसे यह आत्मा अन्य बन्धनोंसे छूटकर केवल अपने स्वभाव विकास रूप रह जाये। इसीको तो मोक्ष कहते हैं।

सहजज्ञान स्वरूप रमणकी सर्वसिद्धिरूपता—भैया सहजज्ञानस्वरूपमें रमण ही कल्याण है और ऐसी स्थिति पाये बिना संसारमें कोई कैसे ही वैभवमें रहे, वह सब धोखा है और उसका फल पतन है। जैसे कोई जितनी ऊंची दीवारसे गिरे उसको उतनी ही अधिक चोट लगेगी। तो संसारके वैभव संग समागम ये मेरे हितकारी नहीं है सो इन परपदार्थोंकी धुनतो रहना ही न चाहिए। केवल मेरेमें रत्नत्रय धर्मका कैसे विकासहो और जिस धर्मका अनुभव करके उसने शान्ति आनन्द पाया, उस रत्नत्रयका दूसरेको भी पता चले ऐसी भावना ज्ञानीके बनती है। स्वपरहितभावनाके ही बल पर वह धर्मप्रचार धर्म प्रसारकी भी भावना रखता है, तो ऐसे धर्मभावके लिए ही हम आपकी धुन रहती है, तो हम आप सुरक्षित हैं। यदि धर्मभावके प्रति प्रीति नहीं है और उसके लिए प्रगतिकी भावना नहीं है तो आज पुण्यके उदयमें चाहे कितना ही मौजके साधनोंमें हो पर रंच भी सुरक्षा नहीं है। तत्काल भी रक्षाहीन है और भविष्यमें भी रक्षाहीन है। इस कारण इस सहज रत्नत्रयभावकी दृष्टि होनी चाहिए। मैं हूं यह सहज दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्वरूप। केवल ज्ञायकभाव, केवल प्रतिभास मात्र। अपनेसे अपनेमें अपने लिए अपनेको बिठाये रखने वाला, जिसका बाहरमें रंच भी कार्य नहीं है ऐसा यह मैं आत्माराम ठीक उस ही स्वरूप हूं। उस ही स्वभावरूप हूं जैसा कि परमात्माका स्वरूप है। इस तरहजो रत्नत्रयके विकास पर दृष्टि रखता है और अपने रत्नत्रयभावको प्राप्त होता है उसको तीनों लोकमें उत्तम सर्वश्रेष्ठ निर्वाण प्राप्त होता है।

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव, सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीताज्जिनपति पदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः॥ १५०॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवानके पदपद्मोंको निरखनेके लिए यह सम्यग्दर्शन रूप लक्ष्मी कामीपुरुषको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सुखभूमि कामिनीकी तरह मेरेको सुख उत्पन्न करे और जैसे शुद्ध शीला जननी माता सुतको पालन करती है इस तरह मुझको पालन करें और गुणोंसे भूषित कन्या जैसे कुलको पवित्र करती है वैसेही मुझको पवित्र करे। इस सम्यग्दर्शनरूप लक्ष्मीको जिनेन्द्रके चरण कमलोंको निरखने वाली कहा है। सो सम्यक्त्व होनेपर जब तक इस जीवके राग शेष रहता है उसके आराध्य जिनेन्द्र भगवान होते हैं और यह अनुराग अभेद सहज आत्मभक्तिका साधन बनता है। ज्ञानी जीवको दो ही कार्य हैं—अपने सहज आत्मस्वरूपकी आराधना करना, या जहां गुणविकास है ऐसे परमात्मस्वरूपकी उपासना करना। इनदो के अतिरिक्त अन्य कुछ भी इसका शरण नहीं है, उपलक्ष्य नहीं है, ध्येय नहीं है, इसी वजहसे सम्यग्दर्शन लक्ष्मीको जिनपतिपदपद्म प्रेक्षिणी विशेषण दिया है कि यह जिनेन्द्रके चरण कमलको निरखने वाली है। यह सम्यक्त्वलक्ष्मी जीवोंको सुखी कर सकती है इसीलिए इससे आशीष चाहा है कि यह सम्यग्दर्शनरूप लक्ष्मी मुझको, जगतको याने सबको सुखी करें।

(१) सम्यक्त्व लक्ष्मीसे विशुद्ध आनन्द पानेका आशीष—यहां उदाहरण दिया है कि जैसे सुखभूमि कामिनी कामी पुरुषको सुखी करती है उदाहरण यह बिल्कुल लौकिक है पर लौकिकजनोंको समझानेके लिए लौकिक उदाहरण भी प्रयोगमें लेना पड़ता है। उदाहरणमें तो भेदकथन है, उपचार कथन है, स्त्री भिन्न द्रव्य है, पुरुष भिन्न द्रव्य है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको सुखी कैसे कर सकता है? पर प्रकरणमें भिन्न द्रव्यकी बात नहीं कही जा रही। सम्यग्दर्शन लक्ष्मी यह आत्माको छोड़कर अन्यत्र नहीं है। आत्माकी ही तारीफ है, सो सम्यग्दर्शन लक्ष्मी मुझको लोगोंको सुखी करे। यहां सुखी करे, इस रूपमें आशीष चाहा है, पर सुखी करे इस आशीषका भाव यह है कि आनन्दमय करें। सुखी होना कोई भली बात नहीं है, क्योंकि सुखका जो वास्तविक स्वरूप है, शब्दके अनुसार जो वाच्य है वहतो अपवित्र बात है। इन्द्रियको सुहावना लगे, मौजमें रहे इसे कहते हैं सुख। पर लौकिकजनोंको समझा रहे हैं और वे इस सुखसे परिचित हैं इस कारण सुख शब्द देकर ही समझाया गया है। वस्तुतः अर्थ यह होता है कि मुझको आनन्दमय करो। आनन्दतो मेरा स्वरूप है, स्वभावतः मैं आनन्दमय हूं, पर उपादानमें कारण पड़ा है इस आनन्दको नष्ट करनेका, ढकनेका विषय व कषाय और अन्तरंग निमित्त है कर्मका उदय, तथा बहिरंग निमित्त हैं आश्रयभूत अनेक कारण। सो जिसको तत्त्वका निर्णय है वही तो सम्यक्त्वका आशीष चाह रहा है। एक प्रकट यह अपने आपमें अनुभव बनता है कि सम्यग्दर्शनका जो वाच्य है, ध्येय है, लक्ष्य है सहज आत्मस्वरूप, उस सहज आत्मस्वरूपकी उपासना नियमसे उन आवरणोंको हटा देती है जो उपादानमें आवरण पड़े हैं और अपने आपको आनन्दमय अनुभव करा देती है। तो यह सम्यक्त्व लक्ष्मी मुझको आनन्दमय करे।

(२) सम्यक्त्व लक्ष्मीसे आत्मपोषण पानेका आशीष—दूसरा उदाहरण दिया है कि शुद्ध स्वभाव वाली मां जैसे पुत्रका पालन करती है उसी प्रकार यह सम्यक्त्वलक्ष्मी मेरा पालन करे। माँ का हृदय विशुद्ध है पुत्रके प्रति। पुत्रका हित चाहती है, पुत्रको हितकार्यमें लगाती है। कदाचित् पुत्र कुमार्गमें जायतो उसे थोड़ा दण्ड देकर कुमार्गसे हटाती है। तो जैसे शुद्ध प्रकृति मांकी पायी जाती है इसी प्रकार मुझ आत्माके प्रति शुद्ध प्रकृति इस सम्यग्दर्शन लक्ष्मीमें पायी जाती है। सम्यक्त्व लक्ष्मी आत्माका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हित ही चाहती है। हितमें ही लगाये रहती है और कदाचित् थोड़ा धर्मभावसे चलितहो तो इस ही की प्रेरणा है कि जो तपश्चरण आदिक लेकर पुन: यह जीव धर्ममें लग जाता है। सो जैसे शुद्धशीला मां पुत्रको पालती है, पोसती है उसी प्रकार यह शुद्धशीला सम्यक्त्व लक्ष्मी मुझको भी पाले-पोसे ऐसी सम्यक्त्व लक्ष्मी,से आशीष लिया है।

(३) सम्यक्त्व लक्ष्मीसे पवित्रता लाभका आशीष—तीसरा उदाहरण दिया है कि जैसे गुण भूषण से भूषित कन्या कुलको पवित्र करती है उसकी प्रकार गुणोंसे भूषित सम्यक्त्व लक्ष्मी मुझको पवित्र करे। कुलको पवित्र लड़का करता है पर यहां उस लड़केको छोड़ दिया है। उस लड़केकी उपेक्षाकी है और कन्याका उदाहरण लिया है।तो व्यवहारमें ऐसा मालूम पड़ता है कि कन्या आज्ञाकारिणीहो, विनयशीलहो, गुणभूषित होतो उसे देखकर कुलकी पवित्रतापर लोगोंकी दृष्टि जल्दी जाती है। वहां पुत्रको देखकर भीजो योग्यहो, कुलपर दृष्टि जाती है, पर कन्याको देखकर विशेषतया कुल पवित्रताकी ओर दृष्टि जाती है। उसका कारण यह भीहो सकता कि एकतो कन्या सरल हृदय होती है तथा जैसी रूढ़ि चली आयी है वैसी अपनेही बलपर पूरी खड़ी हुई नहीं मानते हैं लोग। कन्या जब अविवाहित है तो माता पिताके आधीन है, और जब विवाहित है तब अपने उस कुटुम्बके आधीन है। तो ऐसा होने से अशुद्धता नहो सकनेसे उसमें पवित्रता विशेष होती और गुणभूषितपनाहोतो जैसे जिन्हें लोग बेचारेसा समझते हैं और उनमें गुण दिखेंतो उसके प्रति बहुत आकर्षण होता है शुद्ध हृदयसे, ऐसे ही कन्याको जब योग्य गुणभूषित निरखते हैं तो लोगोंको उसके आदर्शोंके प्रति आस्था बहुत होती है। कुछ भी कारणहो यहां कन्याका उदाहरण दिया है कि जैसे कन्या कुलको पवित्र करती है ऐसे ही गुणभूषित सम्यक्त्व लक्ष्मी मुझको पवित्र करे।

ग्रन्थकर्ता व उनका वर्णनीय लक्ष्य—इस ग्रन्थके कर्ता हैं समन्तभद्राचार्य, जिनकी विद्वत्ताके लिए इस पंचमकालमें हुए ऋषिवरोंकी उपमा मिलना कठिन है। इन्हें कलिकाल सर्वज्ञ कहा जाता था। इनकी रचना आप्तमीमांसा, अष्टशती और अष्टसहस्री जैसी विशाल दृढ़ टीकायें लिखी गई हैं। कैसा प्रभुका स्तवन करते करते समस्त न्यायोंको स्पष्ट कर डालते हैं। वृहत्स्वयंभूस्तोत्र, जिसमें स्तुति तोकी गई है २४ तीर्थंकरोंकी, मगर उस स्तवनमें ही कैसा सयुक्तिक शब्दों द्वारा, संक्षिप्त शब्दों द्वारा न्यायका समस्त हृदय रख दिया है। यह विक्रम सम्वत्की पहली दूसरी शताब्दीके करीब हुए हैं, इनका पाण्डित्य अलौकिक था। समंतभद्राचार्यने इस ग्रन्थमें सर्वप्रथम धर्मका स्वरूप कहा है। सो धर्म हीतो जीवको संसारके संकटोंसे छुड़ाकर उत्तम सुखमें पहुंचाता है। धर्म बिना जीवका कोई भी शरण नहीं है। कर्मका उदय प्रेरित करता है सो जीव बाह्य-बाह्य बातोंमें लगता है, पर बाह्य बाह्य बातोंमें लगनेमें जो समय गुजारा वह समय निरर्थक रहा। उससे आत्माका कोई प्रयोजन नहीं बना। जो क्षण आत्मस्वभावकी दृष्टिमें गुजरेवे क्षण सफल हैं। सो सर्वप्रथम धर्मका निर्देश किया और संकल्प किया कि मैंतो उस समीचीन, उत्कृष्ट धर्मको कहूंगा, जिसधर्मके प्रसादसे जीव संसारके सर्व संकटोंसे छूटकर अनन्त कालके लिए सहज आनन्द प्राप्त करते हैं, वह धर्म है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप।

जैन शासनकी निष्पक्षता, उदारता व सर्वहितकारिता—सम्यग्दर्शनमें देव, शास्त्र, गुरुका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यथार्थ श्रद्धान होना ये सब साधन बनते हैं सहज आत्मस्वरूपके अनुभवके। सम्यग्दर्शन प्रत्येक संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें प्रकटहो सकता है। चाहे ७वें नरकका नारकी भीहो उसके भी सम्यक्त्वहो सकता है। हां इतनी बात अवश्य है कि सम्यक्त्व छूट जायगा मरणसे पहले नारकीका। जिनके क्षायिक सम्यक्त्व है, अथवा जो नरकसे निकलकर तीर्थंकर होंगे, उनका सम्यक्त्वतो दृढ़ है, पर शेष नारकियोंके सम्यक्त्व मरण समयमें छूट जाता है। परहो तो गया सप्तम नरकके नारकीको भी। जो शारीरिक कठिन वेदनायें सह रहा है ऐसा नारकी जीव भी सम्यग्दर्शनके प्रतापसे धीर मन वाला बना हुआ है। सम्यग्दर्शन चाण्डालके भीहो जाता है। बिल्ली, घोड़ा, हाथी, चूहे, मेंढकके भी हो जाता है। होता है बिरलेको, जिसको देशनालब्धि कभी प्राप्त हुई और निर्मल परिणाम बन रहा है, परहो सकता है प्रत्येक संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तको। धर्म कितना उदार है और उसका प्ररूपक जैन शासन कितना उदार है वह जीव मात्रको निरखता है। जो भी आत्मदृष्टि करेगा वह मोक्ष मार्गमें लगता है, ऐसी उदारतापूर्ण घोषणा है जैन शासनकी, वह नारकीहो, तिर्यञ्चहो, मनुष्यहो, देवहो। हां वस्तुस्वरूप ही है ऐसा कि संयम मनुष्यके ही पायाजा सकेगा। और निर्ग्रन्थ होकर आत्म आराधनाके प्रतापसे निर्वाण मनुष्य हीपा सकते हैं। जो जैसी बात है उसको उस प्रकारसे जैन शासनने बताया है। जैन धर्म किसी एक सम्प्रदायका धर्म नहीं, जैन धर्म किसीके कुलके कारण धर्म नहीं। जैन शासनका नाता आत्मभावोंसे है। आत्मा सभी जीव हैं, हां यह उन आत्मावोंकी उस पर्यायकी योग्यता है जिससे कि असंज्ञी जीव सम्यक्त्वको प्राप्त नहीं कर सकते। तो इसे यह न कहा जायगा कि यह पक्षपातकी बात कहता है। क्या करें, आचार्य देव विवश हैं उन असंज्ञी जीवोंमें ऐसी योग्यता ही नहीं है। जिसमें योग्यता है वही सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है, और वहां जैन मार्गका अनुसरण कर अनेक प्रकृतियोंका सम्वर और निर्जरा कर सकता है। जैन शासनकी निष्पक्ष घोषणा है जो वीतराग और सर्वज्ञ हैं वहतो देव हैं। जो निर्दोष वस्तुस्वरूपका कथन करने वाली वाणी है वह शास्त्र है और विषयोंसे विरक्त होकर ज्ञान, ध्यान तपश्चरणमें ही लीन रहने वाले साधु गुरु हैं। इनका श्रद्धान सम्यक्त्वका साधन है, क्योंकि सम्यक्त्व होने पर इनका ही आश्रय और प्रयोग मोक्षमार्गमें बढ़ता है।

सम्यग्दृष्टिका सम्यक्त्वाचरण—जिसके सम्यग्दर्शनहो गया वह अपने आत्मामें रंच भय और शंका नहीं रखता। उसकी दृष्टिमें यह सहज परमात्मतत्त्व स्पष्ट सामने है। जिसके निरखनेपर किसी प्रकारका भय नहीं रहता। सम्यग्दृष्टि जीव एक आत्मविकासके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं चाहता। कर्मोदयसे कैसीही विपत्तियां आयें, उनमें घबड़ाता नहीं, चित्त गिराता नहीं। इसको किसी भी व्यामोहमें आकर्षण नहीं होता। अपने गुणोंके विकासमें बढ़नेकी ही धुन इस ज्ञानी पुरुषकी होती है। वह बाहरके दोषोंको नहीं निरखता, न दोषदृष्टिमें उसका चाव है। फिर भी कहीं दोष विदितहो दूसरेमें तो उनकी उपेक्षा करता है। अथवा साधर्मी तपस्वीजनोंमें दोषहो गए होंतो धर्मभक्तिके कारण उन दोषोंको छुपाता है, सदैव अपने आपको मोक्षमार्गमें लगाये हुए है और सहवासी साधर्मीजनोंको भी इस मार्गमें लगे रहनेकी प्रेरणा करता है। अनूठा अनुराग है इस ज्ञानी पुरुषका साधर्मीजनोंमें, ऐसा अनुराग कुटुम्बीजनोंके प्रति असम्भव है। लोग सर्वाधिक प्रेम कुटुम्बियोंमें करते हैं मगर वहां स्वच्छ प्रेम नहीं होता। उसमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मोह भरा हुआ है, खुदगर्जीको लिए होता है, विषयसे सम्बंधित होता है, पर जिसने जिन अंतस्तत्त्वका अनुभव किया है उसको ऐसे अनुभवी पुरुषोंके प्रति निश्छल प्रेम होता है। यह ज्ञानी जीव अपने आपके आचार विकासमें लगा रहता है और उसकी वृत्तिसे सहजही जैन शासनकी प्रभावना होती रहती है।

सम्यक्त्व सहित देशसंयमकी अर्थकारिता—सम्यग्दर्शन आचरणका मूल है। जिसके सम्यक्त्व नहीं उसके आचरण है, वह बेतुकी क्रिया करके रहा जायगा। जिसका लक्ष्य ही सिद्ध नहींहो पाता उसके आचरणका क्या महत्त्व है? भले ही मंद कषाय होनेसे कुछ पुण्यबंधहो गयातो उससे कुछ सुविधापूर्ण जन्मले लेगा इससे अधिक और क्या पायगा? 'ज्ञानसे ज्ञानमें ज्ञानहीहो', इस स्थितिके होनेका जो आनन्द है उसको सम्यक्त्वहीन कभीपा ही नहीं सकता। ऐसा यह सम्यग्दृष्टि अपने स्वानुभवमें प्रसन्न होता हुआ आगे बढ़ना चाहता है। सो चूंकि पहले बहुतसी विषयकषाय घटनाओंकी बाधा रही आयी और उसका संस्कार कुछ रूपमें शेष रह गयातो उससे बाधा आती है स्वात्ममग्न होनेमें। सो परिग्रहींका त्याग करना, विघ्न बाधावोंको हटाना मात्र है। बाह्य परिग्रहोंके त्यागसे कहीं आत्मविकास नहीं बढ़ा। आत्मविकासतो सहज आत्मस्वरूपकी उपासनासे बढ़ा। मगर ऐसेही योग्यताका मनुष्य है कि पूर्वबद्ध कर्मका संस्कार इस आत्मविकासको नहीं बढ़ने देता—तो उनकाजो बाह्य साधन है, आश्रयभूत कारण है धन वैभव आदिक, उनका त्याग करना, यह ही बाह्य आचारमें बढ़ना कहलाता है। सो गृहस्थ पहिले क्या त्याग करता है, फिर किस तरह त्यागमें बढ़ता है और साथ ही आत्माकी आराधनामें बढ़ता है बस इसही प्रक्रियामें श्रावककी ११ प्रतिमायें बन जाती हैं, सो यह श्रावक उन प्रतिमावोंमें बढ़-बढ़कर ऐसी अपनी शक्ति बढ़ाता है कि सहज आत्मस्वरूपका वह अनुभव अधिक बार करता रहे।

सम्यक्त्वकी सर्वगुणविकासमूलता—इस ग्रन्थमें मुख्यतया सम्यक्त्व और श्रावकके व्रतोंका वर्णन है। सब सदाचारोंका आधार सम्यग्दर्शन है, इस सम्यक्त्वके होनेपर ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान बनता है। चारित्र सम्यक्चारित्र बनता है। सम्यक्त्व आत्मविकासका मूल है। एक लोकमें प्रसिद्ध बात है कि कोई किसी पुरुषकी प्रशंसा करता है तो उसको यों कहकर कहते है कि यहतो सिंहके समान है। वीर है, मगर जरा सिंहकी वृत्तितो निहारो, सिंह मांस खाता है, वह क्रूर प्राणी है। मनुष्यादिकको देख लेतो उसके प्राणघात कर डाले। परन्तु लोग सिंहकी उपमा देते हैं, जिसकी प्रशंसाकी जाती है कि यह पुरुष सिंहके समान है अर्थात् यह पुरुष दूसरोंको मारने वाला है, क्रूर है, यह अर्थ हुआ, पर लोग बड़े चावसे सिंहकी उपमा सुनना पंसद करते हैं, और उसे कहते हैं सिंह वृत्ति। सिंहसे तो अच्छा और बढ़कर कुत्ता है जो कि अपने स्वामीकी सेवा करे, विनयशील रहे, गोदमें लेटे, पहरा देवे, बारबार मुख ताके और कृतज्ञ रहे। देखिये कितने गुण हैं कुत्तेमें। इन गुणोंमेंसे एक भी गुण सिंहमें नहीं है। यदि किसी पुरुषकी प्रशंसा करनाहो तो यह कहना चाहिए कि यह पुरुषतो कुत्तेके समान है, इसकी हम कहां तक बड़ाई करें, कुत्तेके समान परोपकारी है, पर ऐसा क्यों नहीं कहते लोग? उसका कारण यह है कि कुत्तेमें एक अवगुण ऐसा है जिसकी वजहसे उसके इन सारे गुणों पर पानी फिर गया, और सिंहमें एक गुण ऐसा है भीतरी कि जिसके कारण सिंहके सारे अवगुण माफसे कर दिए गए। वे गुण अवगुण क्या हैं? कुत्तेमें अवगुण

Report any errors at rtvikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह है कि उसे यदि कोई लाठी मारेतो वह कुत्ता उस लाठीको चबाता है, लाठीको अपराधी समझता है, उसकी बुद्धिमें यह बात नहीं आती कि मेरेको मारने वालातो यह पुरुष है। इसको कहते हैं मिथ्याबुद्धि। और इनके प्रतिपक्षमें सिंहमें यह गुण है कि कोई सिंहको तलवार मारे या कोई बंदूकका निशाना लगायेतो तलवार या बंदूक पर उसकी दृष्टि नहीं जाती। वह सीधे उस मारने वाले पुरुष पर हमला करता है। उसके सही बुद्धि है। तो ऐसे ही भेदविज्ञानी पुरुष अपनेको सताने वाले विषयकषाय पर ही धावा बोलता है, आश्रयभूत कारणों पर धावा नहीं बोलता। यह लक्ष्य बन जाता है ज्ञानी पुरुषका जिससे कि वह मोक्षमार्गमें आगे बढ़ने के लिए निर्विघ्न सफलहो जाता है।

देशसंयम, सकलसंयमकी साधना करके निश्चयरत्नत्रयाराधक होकर परमात्मत्व अवस्था पानेके पौरुषकी भावना—इस रत्नकरण्डमें आत्मसाधनाका यह क्रम संकेतित किया है कि प्रथमतो कल्याणार्थी निर्दोष सम्यक्त्वको प्राप्त करे जिसमें शंका कांक्षा आदि अङ्गविपरीत दोष नहो, देवमूढ़तादिक तीन मूढ़ताओंमेंसे कोई भी मूढ़ता नहो, ज्ञानमद आदि आठ मदोंमें से कोई भी मद न हो, कुदेवाश्रय आदि छह अनायतनोंमेंसे कोई भी अनायतन नहो। सम्यग्दृष्टि पुरुष दर्शनप्रतिमा आदि ग्यारह प्रतिमावोंमें एकदो आदि प्रतिमावोंको निरतिचार पालन कर जीवन बिताता व्रतपालन करके निष्प्रतीकार बुढ़ापा, रोग आदि उपस्थित होने पर सल्लेखना धारण करना कर्तव्य है। यों धर्मसाधन कर सल्लेखना सहित मरण कर श्रावक शुभ गतिमें जन्म लेता है पश्चात् कर्मभूमिमें मनुष्यभव पाकर निर्ग्रन्थ दिगम्बर होकर अभेदाउपासना करके निर्वाण प्राप्त कर सकता है। निर्वाणलाभ ही सर्वोत्कृष्ट लाभ है। अतः जीवनमें ध्येय एकमात्र यह ही रखनेमें कल्याण है कि मुझेतो परमात्मत्व अवस्था पाना है। परमात्मत्वसे पहिलेकी अवस्थायें सब मेरे लिए व्यर्थ हैं विडम्बनारूप हैं। अतः मैं शुद्धावस्था पानके लिए निज सहज शुद्ध चैतन्य स्वभावमें ही उपयोगको मग्न करूंगा।

॥ इति समाप्त ॥

मैं ज्ञान मात्र हूं मेरे स्वरूप में अन्य का प्रवेश नहीं अतः निर्भार हूं।
मैं ज्ञानघन हूं, मेरे स्वरूप में अपूर्णता नहीं, अतः कृतार्थ हूं।
मैं सहजानन्दमय हूं, मेरे स्वरूप में कष्ट नहीं, अतः स्वयं तृप्त हूं।
ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धम् चिदस्मि ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मकीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी श्रीमद् 'सहजानन्द' महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ॥टेक ॥

१

मैं वह हूं जो हैं भगवान। जो मैं हूं वह हैं भगवान ॥
अन्तर यही ऊपरी जान। वे विराग यहं रागवितान ॥

२

मम स्वरूप है सिद्ध समान। अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ॥
किन्तु आशवश खोया ज्ञान। बना भिखारी निपट अजान ॥

३

सुख-दुख दाता कोई न आन। मोह राग रुष दुखकी खान ॥
निजको निज परको पर जान। फिर दुखका नहिं लेख निदान ॥

४

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम। विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ॥
राग त्यागि पहुंचूँ निजधाम। आकुलताका फिर क्या काम ॥

५

होता स्वयं जगत परिणाम। मैं जगका करता क्या काम ॥ दूर हटो परकृत परिणाम। "सहजानन्द" रहूं अभिराम ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com